भारत सरकार द्वारा विज्ञापनों के लिए मान्यता प्राप्त

आरएनआई पंजीयन RAJHIN/2016/72902

डाक पंजीयन RJ/ UD/ 29-150/ 2020-2022

शब्द रंजन

संस्थापक एवं संरक्षक डॉ. महेन्द्र भानावत

विचार एवं जनसंवाद का पाक्षिक

वर्ष 7 | अंक 14 | उदयपुर सोमवार 01 अगस्त 2022 | पेज 8 | मूल्य 5 रू.

कष्ट की अग्नि में कुंदन सी खरी जीजी नहीं रही

इक्याणु से निन्याणु तक की अणु-उम्र पार करते जीजी बड़ी बहिन, सोहनबाई सौ की उम्र में पहुंच गई तो एकदिन मैंने रोऴ की, 'सौ के बाद तो 'भागा भौ' तक का पहाड़ा रट्टा करते थे।' जीजां वैसी ही मुस्कुराई जैसी जो भी उससे मिलने आता, बच्चा बूढ़ा; सबको अपने पास बुला बिठाती और अपने हाथों की दोनों हथेलियों से उसके गाल सहलती। यही नहीं, मौज आने पर बड़ी उत्फुल्ल-उत्सुक हो बधावा गाती, बड़ी आत्मिक मिठास लिए-

आज तो म्हारे सोना रो सूरज उगियो
म्हारे.... सा पधारिया
म्हूं तो दीवो लेइने जोवूं आपरी वाट
सदाई सुरंगो जीवड़ो।

पौत्र शब्दांक, अर्थांक कहते, 'दादा भुवामां यह सब क्या कर रही, कह रही है? हमें तो कुछ समझ ही नहीं आ रहा।' मैं कहता, 'लाड़ कर रही है।' वे प्रतिप्रश्न करते, 'ये लाड़ क्या होता है?' मैं नि:शब्द हो जाता। आंखें तलाई बन तैर जातीं। दोनों भाई समझ नहीं पाते। उनकी मनस्थिति हक्की-बक्की-सी, मौन स्तब्ध सन्नाटे को तोड़ जीजां टंच मेवाड़ी में उनके हालचाल पूछती। मैं दुभाषिया बन समझाता। वे हां-हूं में सर हिलाते।

जैनत्व की प्रतीक जीजां सूर्यास्त से लेकर सूर्योदय तक निराहार रहती। नियमित साधु-संतों के दर्शन करती। व्याख्यान सुनती। सामायिक, प्रतिक्रमण, उपवास, आयम्बिल करती। माला फेरती। आये-गयों से हाथ जोड़ नमन करती।

जीजां की हजारों स्मृतियां हैं। जो विस्मृतियां बन गईं वे भी अब जब वो नहीं रहीं तब और अधिक उमड़न-घुमड़न दे रही हैं। 29 जुलाई 2022 का दिन, हरियाली अमावस्या का दूसरा दिन केवल महिलाओं के लिए लगने वाले मेले में जीजां नहीं गईं जैसे कह रही है, 'अब बहुत हो गया रे यहां का मेला। आगे और भी मेले देखने हैं।'

जीजां स्वस्थ थीं। अच्छे से बोलती, सुनती, समझती थीं। नख में ही कहीं रोग नहीं था। सब सच है पर दिखता सच यह भी है कि बुढ़ापा अपनेआप में बीमारी है। जीजां से ही नहीं, उन जैसी कई महिलाओं से कई-कई बार धर्मस्थानों का यह भजन सुना- 'बुड़ापा वैरी किस विद होसी थारो छूटको।'

जीजां की एक ही बेटी है। उसका सुसराल का नाम उमराव है मगर पीहर का धन्या नाम ही सबओर बजता ढोल लिये उसे धन्य किये रहा। पिछले दस-पन्द्रह वर्षों से जीजां भी धन्या के पास रह धन्य महसूस कर रही थी। दोनों को आपसी लाड़-प्यार से देख मुझे राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की छठी में पढ़ी 'रंग में भंग' की वह पंक्ति याद हो आती - 'योग्य से ही योग्य का सम्बन्ध होना योग्य था।'

मुझे अपनी मां, भाई-भाभी, अपने जोड़ की गृह-लिछमी और बड़े हुए बेटे की याद हर समय धुंकती रहती है मगर कलम सदैव कमलवत बनाये मल नहीं होने देती है।

इस समय मुझे अपने अग्रज दादाभाई डॉ. नरेन्द्रजी की याद में हिरदै के सभी कोने ओटा लिये हैं। अपनी अ-ठीक होने वाली बीमारी से ग्रस्त होते भी वे उसे पछांटी देते काव्य-सृजन करते रहे। उस दौरान लिखी गई तिथिमय कविताओं का एक संकलन 'ए मेरे मन!' नाम से उन्होंने खुद ने तैयार किया और छपवाया।

भतीजे डॉ. संजीव ने बताया, 'बाबूजी तब ठीक से खड़े भी नहीं हो सकते थे तब भी कट्ठी हिम्मत कर सबको साथ लेकर जयपुर के चौड़ारास्ता स्थित लालभवन गये। वहां दो श्रावक उन्हें अपने कंधों का सहारा देकर ऊपरी मंजिल बिराजित आचार्यश्री हीरामुनि के दर्शनार्थ लेगये। उन्होंने लड़खड़ाती स्थिति में आचार्यश्री को नमन करते वह पुस्तक भेंट की।

उसी 'ए मेरे मन!' में उन्होंने एक कविता जीजी के नाम से लिखी जिसकी रचना-तिथि 26 जुलाई 1993 प्रात: 4 बजे दी हुई है। उसके कुछ अंश यहां द्रष्टव्य हैं-

जीजी! जीवट की धनी।
सोहनबाई सोने की डली,
कष्ट की अग्नि में तपकर कुन्दन सी निखरी।

वह दूसरों का अनाज पीसती,
दूसरों के घर पानी भरती,
दिन में चरखा कातती, कपड़े सीलती और बेचती,
यों घर का गुजारा चलाती।

इधर हम पर गाज गिरी,
पिताजी चल बसे।
मां कोने में बैठी पर थी दिलेरदार,
रूढ़ियों को तोड़कर वह गामड़े चली गयी।

वहां बनज व्यापार करती,
रोटी-रोजी की जुगाड़ बैठाती।
हम जीजी के घर रहे,
जीजी ने कष्ट उठाकर भी
मुसीबत में हमें पाला पोसा,
उसके उपकार को हम भूल नहीं सकते।

विषम स्थिति में भी वह समतुल्य है।
कीचड़ में कमल की तरह प्रफुल्ल है।
अपनी चेतना को जाग्रत किये हुए है।
पाषाण में पारस की तरह द्रवणशील है।
अंधेरे में प्रकाश की तरह दैदीप्यमान है।

उसने संसार के बच्चों को
अपने बच्चे मान लिया है।
वह उन्हें टॉफी देती है,
जीवन-निर्माण के संस्कार देती है।

अब भी गामड़े जाती है,
सबको अपना रस बांटती है।
उसने दुख में से सुख निकालने की
कला सीख ली है।
वह मानवी नहीं, देवी है।

जीजां और धनिया

माँ मेरी!
गाँव की खबर का ताजा अखबार है।
मेरे पास रहती हुई भी
अपने गाँव की चार पीढ़ियों में जी रही है।

वह पूछती-
रामलाल भटक रहा है गोदड़जी वाला
कितने ही देव-देवरे धोके
उसके पोता हुआ कि नहीं?
हूड़ी का छोरा भाग गया था
एकमात्र सहारा था बिचारी का
भरी जवानी में रंडवा गई थी, लौटा कि नहीं?

वो रतन्या कहां है ठाला
कौन वडारे लाता उसके लिए
अच्छा रहा जो कुंवारा रहा।

मैं माँ से कहता-
मैं तो अब किसी को नहीं जानता।
तुम क्यों दिमाग में बोझा रखती हो
इसका, उसका, सबका।

वह बोलती -
यहाँ क्या है रे मेरा
वहाँ तो कई पीढ़ियां और पूरवज हैं मेरे
पुराने रूंख कुए बावड़ी तलाव
मगरे खानें खेत, छापर मंदर
सब तरह की मौज। सबसे मेरा ममत्व।

एक भूरकी गोठण थी मेरी
भरी सर्दी में वह जब
मेरे मोरेहांथ देती तो उसके
डड़बे-डड़बे आँसुओं से ही मैं गरमास पा लेती।

एक चतरभज महाराज थे।
वे हर मोटी तिथि पर आकर पेटिया ले जाते
अब पता ही नहीं चलता
कब अमावस पूनम आती है।

यहां केलड़ी भी नहीं
जो मुल़काये तो मेहमान तो आये।
यहां तो पोता मेरी गोद ही नहीं आता
और टीवी देखते-देखते सपने देखना ही भूल गया है।

मां के बाद जीजां हमारे लिए साक्षात् मातृरूपा रही। जैसा मां ने संघर्ष किया वैसा ही जीजां ने किया। मां के ही नक्शेकदम पर जीजां हम-मां बन रहीं। मैंने मां पर जो कविता लिखी वह यूं-की-यूं जीजां पर पारदर्शित होती है-

ऐसी जीजी सबकी हो। जैसा दशामाता की हर कहानी के अंत में सर्वेभवन्तु सुखीन: की कल्याण-भावना की जाती है वैसा ही जीजी का जिया-हिया सबके प्रति सौहार्द, सहिष्णु, सदाचार और समता की ममता महकाता रहा।

- म. भा.

सवा माह के लिए धरती पर आती है गवरी सालोंसाल

कोई अंचल जब अपनी किसी लोकानुरंजनकारी सशक्त विधा से अन्तर्राष्ट्रीय दस्तक देना शुरू कर देता है तो इतिहास, संस्कृति, परम्परा और जीवन-चैतन्य सभी में एक विशेष हलचल शुरू हो जाती है और उसका पर्यावरण एक भिन्न सांस्कृतिक किंवा विसांस्कृतिक सरोकारों में छटपटाने लगता है। गवरी भी इसी विगत की गत के संक्रमण में शर्मिली होती जा रही है।

गवरी राजस्थान के आदिवासी भीलों का आदिमगंधी जातीय नृत्यानुष्ठान है। भीली गांवों में यह प्रति तीसरे वर्ष भीली लोकदेवी गवरज्या के हुकुम से ली जाती है। सवा माह तक इसका खेल प्रतिदिन सुबह से संध्या तक एक गांव से दूसरे गांव होता रहता है। गवरज्या-गोवरज्या के मन्दिर में इन दिनों अखण्ड दीपक जलता है। इसके लिए निरन्तर एक व्यक्ति वहां बैठा रहता है इस निगरानी में कि कहीं दीपक बुझ न जाये। गोरज्या देवी पार्वती है जो भीलों की बहिन-बेटी और राईबुड़िया पार्वती-पति जामाता हैं जो शिवलोक से भेख बदल सवा माह के लिए धरती पर आकर समृद्धि और खुशहाली दे जाते हैं। नायक-नायिका के रूप में दृश्य-अदृश्य हुए ये लौकिक अलौकिक बने रहते हैं।

गवरी में सब काल और समय का समायोजन मिलता है। पौराणिक, ऐतिहासिक तथा वर्तमान की जीवनधर्मिता का बड़ा अनूठा संगम, लौकिक-अलौकिक सम्मिश्रण से सराबोर है। देव-पात्रों में कालिका, शिव, पार्वती का अवतरण है तो मानव के रूप में मीणा, कंजर, नट, खेतुड़ी, कीर, बणजारा, बामणिया, फत्ता-फत्ती की लीलालैर भी है। दानवों में हठिया, खड़ल्या भूत, भिंयावड़ का उत्पात आतंकित किये रहता है तो पशु पात्र सूर, रींछड़ी, नार का कमाल भी कम प्रभावी नहीं है। नायक राईबुड़िया सबसे अलग पहचान देता है जो अपने मुंह पर मुखौटा लगाये मूंछों पर मरोड़ देता रहता है।

यह गवरी पूरा एक मण्डल है। इसका एक नाम राई भी है। राई इसकी नायिका भी है जो दो होती हैं- शक्ति और पार्वती। इसमें स्वांग-दर-स्वांग, दृश्य-दर-दृश्य प्रकट होते रहते हैं। कथन-संवाद, गीत-गाथा, हास्य-विनोद, वार्ता-बोल, दक्कड़-झक्कड़ सब मिलकर इसे एक परिमार्जित नृत्य-नाट्य अथवा लीला-रूपक का संवर्धन देते हैं। पूरे गांव का जीवनचक्र गवरी के ओल्यूं-दोल्यूं गठान लिये रहता है। गवरी भी होती रहती है। गांव भी चलता रहता है। सारे कामकाज गवरीमय लगते हैं।

गवरी अभिनेता सभी पुरुष होते हैं। नौ तो पंथ वाले ही होते हैं। ये लम्बे-लम्बे घुटनों से भी नीचे तक झग्गे पहने रहते हैं। गवरी समय में इन सबमें शंकर-महादेव का भाव बना रहता है। मादल और थाली; इन दो वाद्यों पर गवरी नाचती है। मादल वादक 'वारतो' कहलाता है। खिलाड़ी को 'खेला' कहते हैं। प्रत्येक खेल के पूर्व और समाप्ति पर गवरी का रासमण्डल होता है तब गवरी गम्मत खाती है। घाई घालती है। सभी रमणिये गोलाकार नाचते पाये जाते हैं। बीचोंबीच त्रिशूल रोपी रहती है। उसके पास भोपा खड़ा रहता है। उसमें देवी के भाव बना रहता है।

एक कथा के अनुसार महादेव का पुजारी हर दिन भक्ति में तन्मय हो महादेव को अपना शीश चढ़ाता और पुनः सरजीवित हो उठता। यह सुन एक गमेती मन्दिर में जा पहुंचा। वह महादेव को क्या चढ़ाये, यह सोच तालाब पहुंचा और माछलों का पोट भर लाया। महादेव को माछले चढ़ाये तो वे बड़े खुश हुए और बोले- 'तुमने मुझे इतने सारे बच्चे दिये तो तुम्हारे भी इतने ही बच्चे हों।' इस वरदान से गमेतियों की जात बढ़ी और समूह रूप में वे महादेव की आराधना स्वरूप गवरी करने लगे। भील-गमेती अपने को 'महादेव का पुजारा' भी मानते हैं।

पूरी गवरी में पंथ वाले एकासणा रखते हैं। आगे-से-आगे गवरी खेलाने की व्यवस्था करने वाला 'गोरण्या' कहलाता है। इसके कमर में घुघंरू बंधे रहते हैं। इसके साथ एक पुजारी और रहता है जो भैरू-झोली रखता है। झामट्या

बुड़िये के साथ डॉ. भानावत एवं डॉ. नरेन्द्र व्यास

गवरी में झामटा देता है और कुटकड्या अपनी कुटकड़ाई से पूरे खेल को रंजनमय किये रखता है।

गवरी का शिव समन्वयकारी है। यह समन्वय जीव और जगत का, जड़ और चेतन का, इन्द्रियां और विवेक का ही नहीं अपितु काम और संयम, शब्द और रूप, इच्छा और कर्म, नृत्य और नाटक, स्वांग और लीला तथा गीत और संवाद का भी है। देह और आत्मा का भी है। लौकिक-अलौकिक का भी है। अपने भोपे के माध्यम से देवी गवरी कभी उसकी पीठ पर सांकल मार देती है। कभी मयूर पंख फटकार द्वारा शुद्ध पर्यावरण देती पाई जाती है। वह जहां गवरी की शुद्धता बनाये रखती है वहां उस पर आने वाली विपत्ति को भी टालती रहती है।

मादल की बजाई पर घाई चलती है। यह बजाई ऊब घाई, हिंडोला घाई, आड़ी घाई, भगमगल्या घाई, ठणका घाई आदि विभिन्न रूप लिये रहती है। प्रारम्भ में जोर-जोर की आवाज दिये ऊब घाई चलती है जिससे लोगों को ज्ञात को जाता है कि गवरी का खेल शुरू होने वाला है। मादल बजाने वाला मादल्या जादू-टोना, तंत्र-मंत्र मूठ का बड़ा जानकार होता है। पूरी गवरी को यह सभी प्रकार के अनिष्टों से बचाये रखता है। एक तरह से गवरी का यही मुख्य सूत्रधार-संचालक होता है। इसके पास एक लाल झोली रहती है जिसमें नींबू आदि मंत्रित किये रहते हैं। गवरी के समय यह झोली त्रिशूल के पास रखी रहती है।

कोई मूठ आती देख वह चलते खेल में अपना जूता ऊपर आकाश की ओर फैंकता है जो ऊपर ही अधर में घूमता है। जूता झेलना और फैंकना दोनों ही क्रियाएं बड़ी जबर्दस्त होती हैं। अधिक वर्ष नहीं हुए, उदयपुर में भारतीय लोककला मण्डल का एक कलाकार गवरी में खेलते हुए मूठ का शिकार हो गया जिससे असमय ही उसके प्राण जाते रहे। तब वह बणजारे की भूमिका में उतरा हुआ था।

नाथद्वारा के घोराघाट में रम रही पूरी गवरी ही जादू-टोने का शिकार होकर समाप्त हो गई। भवानी माता की भागल में भी ऐसे अकाल मृत्यु प्राप्त होने वालों की याद में चीरे बिठाये हुए हैं। नया सिक्खड़ अपना जादुई प्रयोग वृक्षों पर करता है। ऐसी स्थिति में हराभरा वृक्ष सूखा काठ बन जाता है और पुनः लहलहाने लगता है। थाली बजाने वाला भी कम उस्ताद नहीं होता। इसके कमजोर होने की स्थिति में होशियार जादूगरों की बन आती है। एकबार ऐसे ही थाली बजाने वाले का डाका बजाते-बजाते उसकी थाली पर जा चिपका जो चपका ही रह गया और गवरी के सारे पात्र दो फीट ऊंचे जा चढ़ स्थिर होते पाये गये।

गवरी का अन्तिम दिन वलावण यानी विसर्जन का होता है तब मिट्टी का बना एक बड़ा हाथी जुलूस रूप में सरोवर के किनारे ले जाकर पानी में अलोप किया जाता है। कथा है कि महादेश शिव ने जब भस्मासुर को भस्मी कड़ा दे दिया तो वह उस कड़े से उन्हीं को भस्म करने उनके पीछे जा लगा। दौड़ते-दौड़ते कड़ा उसके हाथ से जमीन पर जा गिरा और घुड़कता-घुड़कता दूर तक चलता रहा। भस्मासुर उसके पीछे-पीछे भागा। यह अजीब नजारा एक गाडरी देख रहा था। उसने जोर की हाक लगाई और कहा- 'ठर्रे!' कड़े ने सोचा कि वह मुझे ठहरने के लिए कह रहा है अतः वह वहीं ठहर गया पर भस्मासुर भागा जा रहा था। तेजी में होने के कारण वह कड़े से भी आगे निकल गया। यह देख महादेव आये और भस्मी कड़ा पहन लिया। पहनने के बाद उन्होंने अपने को हाथी रूप में जमीं में छिपा दिया तब से समापन पर हाथी की मंगल आरती और लोक-प्रतिष्ठा प्रारम्भ हो गई।

भीलमय गवरी का महादेव शिव भी भील है। सवल्या भील और पारवती भी हेमना भील की बेटी है। यह गवरी पूरी की पूरी एक रूपकीय काव्य-गाथा है। शिव सु का, शिवम् का प्रतीक है तो भस्मासुर कु का, अशिवम् का द्योतक है। पार्वती नारी है राई जो शिवम् रूप बुड़िया को विषादग्रस्त पाकर पहाड़ सा विराट रूप धारण करती है और सुकल्याणी बन संकट विमोचती है। पूरी गवरी में जहां बुड़िया अलग-थलग बना अपनी विपरीत गति-मति लिये रहता है वहां पार्वती शक्ति-रूप में राइयां पुरुष पात्रों के साथ अपने नायिका-नारीपन से उसे अनुशासित संयमित और समन्वित किये रहती हैं।

गवरी का रास रचाने वाली नौ लाख देवियां जीवन की विविध प्रवृत्तियां हैं। बड़ल्या हींदवा जीवनचक्र का मेरुदण्ड है जिसके सहारे देवियां चलायमान हैं। नवरात्रा रमती झूलती हैं तथा पाती विसर्जन करती हैं। यह समग्र प्रक्रिया असत से सत की ओर अग्रसर होने की है। नौ कली भारत नौ द्वारे के पिंजरे नर की आत्मचेतना का शुद्ध दस्तावेज है। यह भारत महाभारत देता है और उसके आलोड़न-विलोड़न से महान भारत की शिव-संस्कृति का सत्य उद्घाटित करता है।

किसी समय बड़ी प्रभावी रही गवरी ने उन नाट्यप्रेमियों को अवश्य प्रेरणा दी जिन्होंने इसके रंगमण्डल को लेकर आधुनिक नाट्य-विधा में नया आयाम दिया। इसके प्रयोगधर्मी बने नाट्य-रूप दर्शकों में बड़े चर्चित भी रहे।

अब गवरी के बदलते बुड़िये को होली, दीवाली या नवरात्रा पर देख कोई उसके उपजीव्य को, कथा-सूत्र को, लीला-वैविध्य को कहां से खोज निकालेगा! पूरी गवरी के कथातंत्र को कैसे गर्व मण्डित करेगा!

कोई अंचल जब अपनी किसी लोकानुरंजनकारी सशक्त विधा से अन्तर्राष्ट्रीय दस्तक देना शुरू कर देता है तो इतिहास, संस्कृति, परम्परा और जीवन-चैतन्य सभी में एक विशेष हलचल शुरू हो जाती है और उसका पर्यावरण एक भिन्न सांस्कृतिक किंवा विसांस्कृतिक सरोकारों में छटपटाने लगता है। गवरी भी इसी विगत की गत के संक्रमण में शर्मिली होती जा रही है।

गवरी वलावण अथवा विसर्जन के अवसर पर राइयों तथा बुड़िया ने वल्लभनगर (मेवाड़) के गडूल सागर में डूबकी लगाई तो वे बाहर नहीं निकल सके फलस्वरूप पूरे गांव में सन्नाटा छा गया। इसके बाद भीलों ने गवरी लेना बन्द कर दिया। तीसरे वर्ष गवरज्या माता ने गांव के मुख्या को स्वप्न दिया और गांव की खुशहाली के लिए गवरी लेने की प्रेरणा दी तब गवरी फिर से प्रारम्भ हुई। जब विसर्जन के लिए राइयों के साथ डूबकी लगाई गई तो पूर्व में डूबी राइयां भी बाहर निकल आईं। इससे न केवल पूरे गांव में बल्कि पूरे चौखले में आनन्द का अतिरेक छा गया लेकिन राइयां चार हो गई सो विभिन्न मत-मतान्तर चले। अन्त में महाराणा स्वरूपसिंह (1842-1861) ने इसका हल निकालते हुए बुड़िया के साथ राइयां बनने का हुक्म दिया तब से वहां चार राइयां बनती रहीं। **-म. भा.**

स्मृतियों के शिखर (147) : डॉ. महेन्द्र भानावत

भारतीय लोकनृत्यों की बेमेल अनुपम छवियां

बहुत से नृत्य तो बड़े ही अजूबे हैं जो अन्यों के लिए मुश्किल हैं। ऐसे नृत्य भी कम नहीं हैं जो धार्मिक अनुष्ठानों तथा अध्यात्म से सम्बन्धित होकर देवाराधना तथा तंत्रसिद्धि के सकारात्मक पक्ष के उज्ज्वल आराधक हैं। उनकी शक्ति की तो परिकल्पना ही मुश्किल है। हम भारतीय मनीषा को भारतीयता की आंख-पांख से देखें। इसलिए शास्त्र उतना महिमावान नहीं है जितना लोक। लोक का आलोक ही किसी शास्त्र को दीप्त करता है। लोक माटी का वह दीया है जो तेल-बाती से प्रकाशित होता है जबकि शास्त्र बल्ब और बिजली के जोड़ से रोशनी करता है।

राजस्थान कई दृष्टियों से देश के अन्य प्रान्तों से अनुपम और अजूबा है। प्रसंग चाहे भूगोल या इतिहास का हो अथवा शक्ति और भक्ति का या फिर कला तथा संस्कृति का; राजस्थान का कोई सानी नहीं। लोकरंगों की जितनी विविधावलियां यहां देखने को मिलेंगी उतनी अन्य किसी प्रान्त में शायद ही मिलें। लोकनृत्यों की भी यही स्थिति है।

भारत में प्रचलित लोकनृत्यों का ही अध्ययन करें तो लगेगा कि यहां के लोकनृत्यों की जैसी अनुपम छवियां हैं वे अपने में बेमेल हैं। बहुत से नृत्य तो बड़े ही अजूबे हैं जो अन्यों के लिए मुश्किल हैं। ऐसे नृत्य भी कम नहीं हैं जो धार्मिक अनुष्ठानों तथा अध्यात्म से सम्बन्धित होकर देवाराधना तथा तंत्रसिद्धि के सकारात्मक पक्ष के उज्ज्वल आराधक हैं। उनकी शक्ति की तो परिकल्पना ही मुश्किल है।

लोक में प्रचलित इस विपुल और विविध पक्षीय अकूत संपदा का अध्ययन एवं अन्वेषण करने से पूर्व हमें लोक और उसकी श्रुति को ठीक से समझना होगा। यह श्रुति चिर पुरातन है तो चिर नूतन भी, इसलिए यह शाश्वत भी है। इस बारीकी एवं गहराई को भी हमें समझना होगा कि हम भारतीय मनीषा को भारतीयता की आंख-पांख से देखें। पराई विदेशी दृष्टि से देखने की हमारी मानसिकता ने अर्थ का अनर्थ ही अधिक किया है। इससे हमारी शब्द-शक्ति का बड़ा क्षरण हुआ है।

यह लोक वाचिक-परम्परा का महत्त्वपूर्ण सेतु है। वाचिक-परम्परा श्रव्य-परम्परा है। इसमें सब कुछ कहन, कथन होता है। यह लोक उस पूरे लोक का समूह है जो इन्द्रिय गोचर है। जो कुछ देखा, सुना, चखा, सूंघा और छुआ जा सकता है वह सब इस लोक में सन्निहित है लेकिन यही नहीं, लोक तो और भी है- पराशक्ति , अलौकिक, रहस्यमय, अबूझ और अज्ञेय का। यह लोक भी इसी लोक का हिस्सा है। मनुष्य इसके केन्द्र में है। मध्य में है। माध्यम है क्योंकि वही विशिष्ट, महत्त्वपूर्ण और चेतनशील प्राणी है जो पांचों इन्द्रियों का धारक भी है।

जीवन-व्यवहार में ही नहीं, अपितु साहित्य, संस्कृति, कला, स्थापत्य तथा प्रकृति-कृति में भी राजस्थान के अनेकानेक रंग रूपायित हैं। इन रंगों की अनेक चासनियां विविध कथा-किस्सों, बात-बोलों, कहावत-मुहावरों, खेल-तमाशों तथा शिल्पगत संस्कारों द्वारा इन्द्रधनुषी लय-जयकारों में देखने को मिलती हैं। सर्वाधिक सांस्कृतिक रंगों की मोहक मधुरिम छटाओं का सौंदर्य देखना हो तो अनगिनत कथाएं अपने श्रवण, चक्षुण एवं पठन के पायदान पर मुलकाती मिलती हैं।

ऐसे अनेक गीतों के माध्यम से गायकों, गाथाओं के माध्यम से गावेरियों तथा कथाओं के माध्यम से कथक्कड़ों ने उन चरित्रों को जीवित रखा जिन्होंने समाज तथा मानव हित के लिए अपना उत्सर्ग कर दिया। उनमें से कई इतिहास के पन्नों पर चढ़े ख्यात बने हुए हैं। कई कण्ठासीन बने युगयुगीन जीवंतता के बोधक हैं तो कई कहावतों तथा मुहावरों के माध्यम से मानवीय मूल्यों तथा नैतिकता के मापदण्डों के प्रतीक बने हुए हैं। अतीत के ये चरित्र हमारी जीवनधर्मिता के साथ आज भी उतने ही प्रासंगिक बनकर विकसित कहे जाने वाले समाज के लिए प्रेरणा के स्त्रोत बने हुए हैं।

राजस्थान में ऐसे वीरवरों को याद रखते हुए उन्हें मान-सम्मान सूचक रंग देने की परम्परा है। परम्परा की इस कड़ी में राम-लक्ष्मण से लेकर वर्तमान काल तक के परमवीर पीरनसिंह शेखावत जैसे वीरों का श्रद्धापूर्वक स्मरण किया जाता है। यथा-

रंग रामा, रंग लिछमणा, रंग दशरथ रै कंवरांह।
लंका लूटी सोवणी, आलीजा भंवराह।।
टीथवाल री घाटियां, विकट पहाड़ां बंक।
शेखे किये अद्‌भुत सफर, रंग पीरुसी रंग।।

आजादी के बाद प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने पूरे देश का भ्रमण कर उसके विविध अंचलों में बस रहे लोगों की कला-परम्पराओं, मन-बहलाव की बहुरंगी चेतनाओं तथा जीवनयापन से जुड़े हर्षोल्लासजनित सांस्कृतिक संस्कारों को निहार कर पाया कि यहां के लोकनृत्य सर्वाधिक छवि लिये हैं जो समग्र रूप से भारतीयता की गहरी तथा ठेठ जीवन के मूल स्त्रोतों के रक्षक बने हुए हैं। इस दृष्टि से राजस्थान उन्हें सर्वाधिक रंगीन प्रदेश लगा और प्रेरणा हुई भारतीय की असल

आत्मा का यदि एकसाथ दिग्दर्शन करना हो तो लोकनृत्यों का एक ऐसा समारोह आयोजित किया जाना चाहिये जिसमें विविध प्रान्तों के लोकनृत्यों की झांकियों द्वारा भारत के जनजीवन की मूल आत्मा के स्वरूप का दरसाव हो और उसके माध्यम से देश की अमूल्य कलानिधि का संरक्षण हो जिससे लोगों को यह लगे कि यह समृद्ध कला हमारी विरासत बनी रहे। कहीं ऐसा न हो कि हमारे देखते-देखते हमारे हाथों से यह विलुप्त हो जाय। यही सोचकर उन्होंने गणराज्य दिवस पर सर्वप्रथम 1953 में राजधानी दिल्ली में लोकनृत्य समारोह का शुभारम्भ किया।

वाचिक-परम्परा का उल्लेखनीय पक्ष सम्प्रेषण है। यह सम्प्रेषण मात्र भाषा का ही नहीं, हाव-भावों का, इशारों का, चेष्टाओं का, नकल का, व्यक्त का, अव्यक्त का, मौन का, हंसी का, रूदन का, चीख का, चिल्लाहट का, गर्जन का, क्रन्दन का, विषाद का, संकेत का, समझ और साहचर्य आदि का भी हो सकता है। भाषा के पूर्व का माध्यम तो संकेत ही था जो मनुष्य के साथ आदिमकाल से ही चला आ रहा है। नृत्य इसका प्रबल और सशक्त माध्यम कहा जा सकता है।

राजा-महाराजाओं के संरक्षण और जजमानी प्रथा के कारण यहां बहुत से नृत्य फले-फूले और अपनी पहचान बनाये रह सके। धर्म के विभिन्न तानोंबानों और सम्प्रदायों की मान्यताओं ने भी यहां के लोकनृत्यों पर अपना जबर्दस्त प्रभाव छोड़ा। मेलोंठेलों, उत्सवों और यात्रा-संघों ने भी इसमें नई स्फूर्ति और जोश जगाया। जीविकोपार्जन के साधन बनने के कारण नृत्यों की भावभूमि ने तदनुरूप रंग बनाये रखा।

आजादी के पहले और उसके बाद की स्थितियों में बड़ा अन्तर आया है। इसके फलस्वरूप बहुत से लोकनृत्यों के रूप-स्वरूप में परिवर्तन हुआ है। कुछ की पहचान धूमिल हुई है तो कुछ अनजाने रहे अब अधिक जानने लगे हैं। जो अपने ही अंचल तक सीमित थे उनको अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज मिला है। कुछ जिस नाम से पहले चर्चित थे, अब उससे भिन्न नाम लिये हैं। ऐसा भी हुआ है जब जो नृत्य जिस जाति में प्रचलित रहा उसी जाति के नाम से उसकी प्रसिद्धि बन गई। ऐसे नृत्य भी हैं जो नृत्य की किसी खास सीमा में नहीं आने पर भी जनता जनार्दन में नृत्य के रूप में उनकी प्रतिष्ठा है।

संगीत के घराने की तरह लोकनृत्यों के घराने जैसी परम्परा देखने को नहीं मिलती। अलबत्ता पेशेवर कलाकार और आम आदमी के लोकनृत्यों में अवश्य भिन्नता देखने को मिलती है। पेशेवर कलाकारों के लोकनृत्य अधिक सधे हुए और दर्शकों की मनस्थिति के अनुरूप परिस्थितिजन्य अभिव्यक्ति लिये होते हैं। देहाती और शहरी लोकनृत्यों में भी भिन्नता के दर्शन होते हैं। देहाती लोकनृत्य अपनी परम्परा की पैठ लिये अति सरल और सहजभावी होते हैं जबकि शहरी लोकनृत्यों में रूपान्तरित भावभूमि और वातावरणीय तडक़-भडक़ की प्रधानता देखने को मिलती है।

संक्षेप में प्रकृति एवं स्वरूप की दृष्टि से लोकनृत्यों का विभाजन निम्नानुसार किया जा सकता है-

(1) वृत्ताकार नृत्य
(2) कतारबद्ध नृत्य
(3) जुलूस नृत्य

लोक की गहन अनुभूति और समझ रखने वाले शास्त्रकारों और सूत्रविज्ञों ने इसका खुलासा करते हुए जैन आगम सूत्र स्थानांग के चतुर्थ स्थान में चार प्रकार के नृत्यों का उल्लेख किया है। ये नृत्य लोकजीवन में प्रचलित नृत्य-रूप ही हैं। यथा-

(1) ठहर-ठहरकर नाचे जाने वाले नृत्य
(2) संगीत के साथ नाचे जाने वाले नृत्य
(3) संकेतों द्वारा भाव प्रकट करने वाले नृत्य
(4) झुककर अथवा लेटकर किये जाने वाले नृत्य

शास्त्रों में पंचतत्व- पृथ्वी, आकाश, वायु, जल और अग्नि का सम्बन्ध भी नृत्यों से जोड़ा गया है। राजस्थान के घूमर नृत्य में पृथ्वी विभाव की गतियों का उल्लेख करते हुए डॉ. जयचन्द्र शर्मा ने ग्यारह कलामान गिनाये हैं। यथा-

(1) एक ही स्थान पर घूमने को भ्रमर गति
(2) आगे-पीछे, दांये-बांये नृत्य का विस्तार करने को विस्तारिणी
(3) पूरे रंगमंच का चक्कर लगाने को भ्रमणी
(4) शरीर को पूरी तरह सीधा रख नृत्य करने को शिखरणी
(5) अंग-प्रत्यंगों के संचालन की स्वाभाविक क्रिया को शान्ता
(6) गर्दन एवं नेत्रों का लयबद्ध संचालन सलिला
(7) कमर की लचक के साथ नाचने को सुजला
(8) प्रत्येक भाव को घुमाव के साथ प्रस्तुत करने को रत्ना
(9) तीव्र गति से घूमने और द्रुत गति से अंग-प्रत्यंगों का संचालन करने को नाशिनी
(10) घूंघट के भावों को प्रस्तुत करने को गृहिणी
(11) घाघरे के दोनों कोनों को पकड़ नृत्य करने की मुद्रा को पालनी अथवा मयूरी कहा गया है।

नृत्य जब थिरकता है तो संगीत की मनचली चलती है। उस हाव और भाव में ही संगीत की सहचरी सरहराती है। फसलें लहलहाती हैं तो हवा सर्रफर्र संगीत का राग देती हैं। आकाश गरजता है तो बीजली के बोल अलापते हैं। मयूर नाचता है तो मेहा झरमर-झरमर टप्पे देता है।

लोकनृत्य लोकजीवन को सर्वाधिक रंगीन और रसपूर्ण बनाते हैं। इनके साथ गीत से भी अधिक संगीत का निनाद महत्वपूर्ण है जिसके बूते कोई नृत्य गति, लय, थिरकन एवं अंग पकड़ता है। संगीत और नृत्य का सम्बन्ध हल-बैल की तरह है किन्तु जब ये चरम अवस्था लिये होते हैं तब इनका स्पर्धाभाव एक भिन्न लोक की सृष्टि करता पाया जाता है। इनकी शक्ति पानी, अग्नि तथा वायु की ताकत से भी सवाई कही गई है। जब ये असीम हो जाते हैं तब नृत्य-संगीत ही इन्हें वशीभूत कर सकता है। इसलिए शास्त्र उतना महिमावान नहीं है जितना लोक। लोक का आलोक ही किसी शास्त्र को दीप्त करता है। लोक माटी का वह दीया है जो तेल-बाती से प्रकाशित होता है जबकि शास्त्र बल्ब और बिजली के जोड़ से रोशनी करता है।

लगभग छठी सदी में लिखित 'विष्णुधर्मोत्तर पुराण' के 'नृत्त सूत्र' में नृत्य के सम्पूर्ण संहिता-ज्ञान को लोकहित के उद्‌देश्य से परिकल्पित किया गया है। प्रारम्भ से ही लोक में नर्तन की परम्परा के जिन उद्‌देश्यों को, लक्ष्यों को देखा गया था वे हैं-

- शेष पृष्ठ सात पर

शब्द रंजन

उदयपुर,सोमवार 01 अगस्त 2022

सम्पादकीय

पीठ पर 'संपिणी' से बाल-घात

सांप-विज्ञान अपने आपमें पूरा शास्त्र, दर्शन और लोकपिटारा है। लोक-ज्ञान असीमित है पर उसको जानने, समझने और पहचानने वाले अधिक नहीं हैं। जानकारी के अभाव में हमारी प्रकृति और प्रवृत्ति अंधविश्वास, ढकोसला आदि कह कर उस रचना पर विराम लगा देती है पर ऐसी ही बात नहीं है।

जिन माताओं के बाल-बच्चे जीवित नहीं रहते हैं उनके कारण की टोह में आज का विज्ञान या तो मौन है या ऐसी दलील प्रस्तुत करेगा कि उसका अता-पता ही नहीं बनेगा। बाल-चिकित्सकों के पास भी कोई जवाब नहीं मिलेगा। उनकी मेडिकल की पढ़ाई में यह पक्ष बेसिर-पैर का ही समझा जाता है।

हमारे अपने सर्वेक्षण-अध्ययन में ऐसे तथ्य उद्घाटित हुए हैं। एक महिला के तेरह बाल-बच्चे हुए तब भी उसकी कोख सूनी-की-सूनी रही। छोटे-मोटे टोने-टोटके तो किये-कराये पर कोई पुख्ता इलाज तो था नहीं। जिसे अड़क इलाज कहते हैं, उसके अनुसार पूछते-पाछते एक समझू व्यक्ति मिल गया।

उसने कहीं से यह इल्म सीखा था। साठा-पाठा यानी साठ वर्ष की उम्र लिये पाका अनुभवी था। उसने उस महिला की पीठ देखी और बताया कि पीठ पर एक जगह संपिणी कुण्डली मार कर बैठी है। जब जो भी सन्तान होती है उसका भख ले लेती है, उसका भक्षण कर देती है। इसलिए उसने तेरह सन्तान होने पर भी एक भी जिन्दी नहीं रहने दी।

लोकजनों की आबादी में कौन क्या कुबत छिपाये है, उसका रहस्य हर कोई नहीं जान पाता। ऐसी गुह्य चीजों की जानकारी के लिए भाग्यवश ही कोई गुरु मिल जाता है जो कुछ सिखाने के लिए तैयार होता है। बहुत सी विद्याएं ऐसी हैं जिन्हें विशिष्ट साधनापूर्वक साधनी पड़ती हैं। जहां तक बस चलता है, ये विद्याएं कोई किसी को बताता नहीं है।

जैसे हाथ की रेखाएं देखकर बहुत सारी पिछली-अगाड़ी बातें कही जाती हैं वैसे ही पीठ पर विभिन्न निशान देखकर पूर्वजन्म और वर्तमान जीवन-परिवेश की अनेक बातें खुल पड़ती हैं मगर जानकार सब जानते हुए भी वही कुछ कहते हैं जो बतानी नहीं होती है।

बड़ीसादड़ी-मावली आमान परिवर्तित रेलखंड का लोकार्पण

उदयपुर (ह. सं.)। देश की प्रगति में भारतीय रेल द्वारा यात्री सुविधाओं का विकास और विस्तार किया जा रहा है। इसी कड़ी में रेल, संचार, इलेक्ट्रानिक्स एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्री भारत सरकार अश्विनी वैष्णव की उपस्थिति में 31 जुलाई को बड़ीसादड़ी रेलवे स्टेशन पर बड़ीसादड़ी-मावली रेलखंड के आमान परिवर्तन का लोकार्पण किया गया। इस आमान परिवर्तित रेल लाइन पर प्रथम रेलसेवा बड़ी सादड़ी-उदयपुर सिटी उद्घाटन स्पेशल तथा वीडियो लिंक के माध्यम से रीवा-उदयपुर सिटी स्पेशल व पश्चिम बंगाल के सिउड़ी-सियालदह-सिउड़ी मेमू ट्रेन को हरी झण्डी दिखाकर रवाना किया।

समारोह में नेता प्रतिपक्ष राजस्थान विधानसभा गुलाबचंद कटारिया, चित्तौड़गढ़ सांसद चन्द्रप्रकाश जोशी, चित्तौड़गढ़ पूर्व सांसद श्रीचंद कृपलानी, बड़ीसादड़ी विधायक ललितकुमार ओस्तवाल, उदयपुर ग्रामीण विधायक फूलसिंह मीणा उपस्थिति थे।

रेलमंत्री अश्विनी वैष्णव ने कहा कि भारतीय रेल प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदीजी के नेतृत्व में नई दिशा की ओर अग्रसर हो रही है। उन्होंने राजस्थान की इस वीरभूमि का नमन किया और इस क्षेत्र में रेलवे के विकास के लिये स्थानीय सांसद की प्रशंसा की। रेलमंत्री ने बताया कि उदयपुर सिटी रेलवे को वर्ल्ड क्लास बनाने का कार्य अब केवल चर्चा में नहीं है बल्कि इसके टेण्डर जारी हो गये है। अगस्त माह में यह टेण्डर फाइनल कर कार्य प्रारम्भ कर दिया जायेगा। अश्विनी वैष्णव ने इस अवसर पर चित्तौडगढ़ स्टेशन को वर्ल्ड क्लास स्टेशन बनाने की घोषणा की। रेलमंत्री ने जनप्रतिनिधियों की बड़ीसादड़ी-उदयपुर रेलसेवा के दिन में 2 फेरों की मांग पर तुरंत कार्यवाही करते हुये 15 अगस्त से प्रतिदिन 2 फेरे करने की घोषणा की।

गुलाबचंद कटारिया ने रेलमंत्री का वीरों की भूमि पर स्वागत करते हुए कहा कि विगत वर्षों में रेलवे में जो परिवर्तन आये हैं वे उल्लेखनीय हैं। चन्द्रप्रकाश जोशी ने रेलमंत्रीजी का धन्यवाद दिया और इस रेलसेवा का नाम भामाशाह एक्सप्रेस रखने की मांग की। समारोह में उत्तर पश्चिम रेलवे के महाप्रबंधक विजय शर्मा, उत्तर पश्चिम रेलवे के मुख्य प्रशासनिक अधिकारी/निर्माण बृजेशकुमार गुप्ता, मंडल रेल प्रबंधक-अजमेर नवीनकुमार परसुरामका सहित कई अधिकारी व कर्मचारीगण उपस्थित थे।

ये 'इत्यादि' आप ही तो हैं

- किशन दाधीच -

बात बहुत पुरानी है। अगर ठीक से याद पड़ता है तो सन् 1980 की है। आकाशवाणी उदयपुर केन्द्र ने स्वतंत्रता दिवस की पूर्व संध्या पर एक शानदार काव्यगोष्ठी, अपने ही स्टुडियो में आमंत्रित की थी।

उसमें नामचीन कवियों ने भाग लिया था। जिन कुछ के नाम याद आ रहे हैं, उनमें प्रो. नंद चतुर्वेदी, डॉ. प्रकाश 'आतुर', मंगल सक्सेना, डॉ. भगवतीलाल व्यास, प्रो. घनश्याम 'शलभ', डॉ. प्रभा वाजपेयी, डॉ. महेन्द्र भानावत, डॉ. पुरुषोत्तम छंगाणी, प्रो. देवकर्णसिंह राठौड़ तथा कांकराली से क़मर मेवाड़ी थे।

भागजोग से दूसरी संध्या को चेटक सर्कल स्थित पान की दुकान पर नंदबाबू, प्रकाशजी और भगवतीजी मिल गये। मैं भी उधर से निकल रहा था सो मैं भी उनकी जमात में शरीक हो गया। जैसा कि सबको विदित है, जहां नंदजी,-प्रकाशजी मिल जाते वहां ठहाकों की शतरंगी महफिल जुड़ जाती तब सड़क पर खड़े-खड़े जो साहित्यसंगी रस-वर्षा होती, उससे आसपास के लोग भी रसवन्त हुए मिलते।

कल वाली काव्यगोष्ठी की जब बात छिड़ी तो मुझ से रहा नहीं गया। कह बैठा, 'उस गोष्ठी में हमारा तो नाम ही नहीं आया। जिन लोगों ने उसमें भाग लिया वे सभी स्थापित कवि थे जिनका आकाशवाणी से उनकी कविताओं का निरन्तर प्रसारण होता आ रहा है।' नंदजी बोले, 'सो तो ठीक है पर आप कहना क्या चाहते हैं। कौन कहां वंचित रह गया। सभी तो समान रूप से चर्चित रहे हैं।'

'मैं तो जो समाचार आज के अखबार में छपा है, उसकी बात कर रहा हूं जी। उसमें तो केवल प्रो. नंद चतुर्वेदी, डॉ. प्रकाश 'आतुर' मंगल सक्सेना और डॉ. महेन्द्र भानावत के नाम ही छपे हैं।' मैंने कहा। यह सुन नंदजी बोले, 'ऐसा हर्गिज नहीं हो सकता। आपका नाम नहीं हो, ऐसा मैं मान ही नहीं सकता। आपने कई वरिष्ठ कवियों के साथ पूरे देश में कवि सम्मेलनों भाग लिया है। आप श्रेष्ठ गीतकार के रूप में चर्चित हैं। मेरे, प्रकाशजी और मंगल के साथ भी आपने कई जगह रातें उजली की हैं।'

मैंने कहा, 'मैं अखबार में प्रकाशित खबर की बात कर रहा हूं।' नंदजी ने इशारा दिया तो मैं पास ही 'मंगल मुद्रण' गया। वहां महेन्द्रजी बैठे मिल गये। मैं उस दिन का अंक लेकर महेन्द्रजी के साथ पहुंचा। नंदजी के कहने पर वह समाचार पढ़ा गया। उसमें जिन चार नामों की ऊपर चर्चा की गई उसके बाद 'इत्यादि ने रचना पाठ किया' छपा था। यह सुन तपाक से नंद बाबू बोले, 'यह 'इत्यादि' आप ही तो हैं।'

इस पर हमारी जो ठहाकी हंसी छूटी उससे वहां पान-सिगरेट पाने वाले भी स्तब्ध रह गये। आज भी जब कभी मित्रों के बीच वह जिक्र आता है तो हम हंसे बिना नहीं रहते। अब वैसा समय और वैसे यारबाज कहां मिलेंगे। तब साहित्यकारों में जिन्दादिली थी सो जहां भी वे मिल जाते, रस-वर्षा हो जाती। हां, उस गोष्ठी का संचालन नंद बाबू ने ही किया था।

राजस्थान सरकार का अंग्रेजी मोह या....

-डॉ. राजेन्द्रमोहन भटनागर-

हाल ही में राजस्थान सरकार ने 223 हिन्दी मीडियम स्कूलों को महात्मा गांधी इंग्लिश स्कूल में बदला है। आजादी के 75 वर्ष बाद राजस्थान सरकार को ऐसा क्यों करना पड़ा कि सरकारी हिन्दी मीडियम स्कूलों को अंग्रेजी मीडियम स्कूलों में बदलना पड़ा। सरकार का यह तर्क है कि जो छात्र आर्थिक कठिनाई के कारण गैर सरकारी इंग्लिश स्कूल में जाने के लाभ से वंचित रह जाते हैं, यह उनकी वर्षों से मांग थी।

दूसरा मत यह है कि इससे सरकार ने यह सन्देश भी दिया कि राज्य को इंग्लिश के वर्चस्व को स्वीकारना पड़ा। अर्थात् दक्षिण भारत का हिन्दी विरोध उचित था। शंका यह भी उठती है, सरकार दीर्घकालीन समय तक हिन्दी भाषा के अस्तित्व के प्रति उदासीन रही और अंग्रेजी मोह का त्याग नहीं कर सकी।

लेकिन हिन्दी मीडियम स्कूलों को इंग्लिश मीडियम स्कूल क्यों बनाएं। नए स्कूल क्यों नहीं खोले। क्या यह हिन्दी स्कूलों और हिन्दी भाषीय स्कूलों को सरकार का कमतर आंकना नहीं है? यह जानते हुए कि भारत की आजादी में हिन्दी की भूमिका सर्वाधिक रही थी और गांधीजी हिन्दी के पक्षधर थे, गुजराती होते हुए भी। गांधीजी के नाम का क्यों दुरूपयोग किया सरकार ने! सरकार को इतनी जल्दी क्या थी कि पूर्व व्यवस्था के बिना उसको ऐसा करना पड़ा!

दूसरे सरकार के इस आदेश को चुनौती देने के लिए न्यायालय जाना पड़ा। न्यायाधीश संदीप मेहता और न्यायाधीश कुलदीप माथुर की खण्डपीठ को याचिकाकर्त्ता रिजवान अहमद शेख की याचिका पर यह अधूरी व्यवस्था देनी पड़ी कि कोई नया छात्र हिन्दी माध्यम में प्रवेश लेना चाहे तो उसे सीटों की उपलब्धता की शर्त पर प्रवेश दिया जाय। आगे की कार्यवाही के लिए तीन सप्ताह बाद सुनवाई होगी।

सरकार के पास विधिवेत्ता हैं फिर सरकार ने अपने आदेश में उनसे लाभ क्यों नहीं लिया, ताकि छात्र को कोर्ट में याचिका पेश करने की जरूरत नहीं पड़ती और यदि लिया तो ऐसा अधूरा आदेश क्यों रहा! ये सब विचारणीय प्रश्न हैं जो हमारे लोकतंत्र पर प्रश्न उठा रहे हैं और सरकार के महत्त्व को दिन-पर-दिन कम कर रहे हैं।

लोक में चकवा पक्षी

चकवा पक्षी अन्य सभी पक्षियों में अपनी अलग खासियत रखता है। वैसे तो यह ईरान और पाकिस्तान का राष्ट्रीय पक्षी है पर विश्व के अनेक देशों में यथा- अफगानिस्तान, उजबेकिस्तान, कजाकिस्तान, तुर्कमेस्तितान तथा चीन, मंगोलिया, तुर्की आदि में अपनी अच्छी उपस्थिति लिये है।

भारत में इस पक्षी के सम्बन्ध में कई मिथक प्रचलित हैं। जैसे इसे चन्द्रमा बड़ा प्रिय है जिसकी ओर यह एकटक टकटकी लगाये निहारता रहता है। यह अंगारों का भक्षण करता है। चकवा-चकवी रात होते ही अलग-थलग होते हैं जिनसे इन्हें हार्दिक वेदना झेलनी पड़ती है। दोनों का प्यार असीम कहा गया है। किसी विषैली वस्तु को देखते ही इसकी आंखें लाल हुई मिलती हैं। यही कारण है कि राजा-महाराजा का यह अत्यन्त ही पालतू पक्षी रहा कारण कि भोजन के समय इसकी विशेष उपस्थिति रहती। इससे भोजन की परीक्षा हो जाती। भोजन में विष होने की स्थिति में यह अपने प्राण भी गंवा बैठता है।

गायक जातियों में चकवे के सम्बन्ध में यह दोहा प्रायः सुना जाता है-

सांझ पड़ी दन आथम्यो, चकवी दीनो रोय।
चल चकवा उण देश मां, जहां न रातां होय।।

नर चकवा प्रेमालाप के लिये विशेष यत्नशील रहता है। वह सिर और पंख झुकाकर, गर्दन फुलाकर मादा को रिझाता है और पीछा करता है। कभी-कभी विशेष प्रकार की आवाज निकाल चकवी को रिझाता है। ध्यान से देखने पर कबूतर भी कबूतरी के साथ कुछ ऐसी ही हरकतें करता पाया जाता है।

चकवा-चकवी के सम्बन्ध में लोक में यह प्रवाद भी सुनने को मिलता है-

सांझ पड़ी दन आथम्यो, चकवी भयो वियोग।
पणिहारी यूं भाखियो, ये विधाता का जोग।।

अर्थात् संध्या समय दिन अस्त हुआ कि चकवी को विरह सताने लगा। यह देख पणिहारी बोली, विधाता का ऐसा ही योग है। पणिहारी का यह बोल सुन चकवी बोली-

जा पणिहारी भर घड़ो, कर न पराई बात।
जिको तिहारो दिन हर्यो, तिको हमारी रात।।

अर्थात् पणिहारी, तू अपना घड़ा भर। दूसरों की बात मत कर। जैसे तुम्हारा दिन विरह लिए है वैसे ही हमारी रात है।

चित्रकूट में तोते द्वारा तुलसी को राम-लखन के दर्शन

देश के सुप्रसिद्ध परिक्रमा-स्थलों में कामदगिरि की परिक्रमा का कई दृष्टियों से विशेष माहात्म्य है। यह पर्वतमाला उत्तरप्रदेश के बांदा जिला स्थित चित्रकूट की शोभास्थली है। पंचकोसी यह परिक्रमा यों तो सदैव ही आबाद रहती है मगर मुख्यत: सोमवती अमावस को इसका जनसैलाब देखते ही बनता है। इस दिन पूरा मार्ग ही जातरियों से अटा ठठाठठ्ठ रहता है। बहती नदी की तरह परिक्रमार्थियों का मेला नाना प्रकार के गीतों, जयकारों तथा चहलकदमी आशा-उम्मीदों से उल्लसित जागरण का शंख वादन किये चप्पे-चप्पे को जगाता, जागृत करता जात्रा पथ पर बढ़ा रहता है।

कामदनाथ भगवान के चारों दिशाओं के चार स्वरूप

कामदगिरि का अर्थ ही वह पहाड़ी स्थल है जो सर्वप्रकारेण मनोहारी के साथ मनोरथ पूर्ण करने वाला है। इसकी यात्रा-परिक्रमा पंच कोसी है जिसमें जगह-जगह पांच रहस्यमय अद्‌भुत एवं अनुपम पड़ाव स्थल हैं जो भगवान राम के जीवन से सम्बन्धित विविध कथा-आख्यान-मिथक लिये हैं।

कामदगिरि पर्वत अनेक रहस्यों के साथ अलौकिक ही है। इसकी विशेषता यह भी है कि इसका आधा भाग मध्यप्रदेश के सतना तक तथा आधा भाग उत्तरप्रदेश के कामतानाथ तक फैलाव लिये है। मुख्यद्वार कामतानाथ में है। यह भी कि इस पहाड़ में बन्दरों का आधिक्य भी बड़ा दिलचस्प है। इस दृष्टि से आधे भाग सतना तक काले मुंह के बन्दर तथा शेष आधे भाग में लाल मुंह के वानर समुदाय का साम्राज्य फैलाव लिये है।

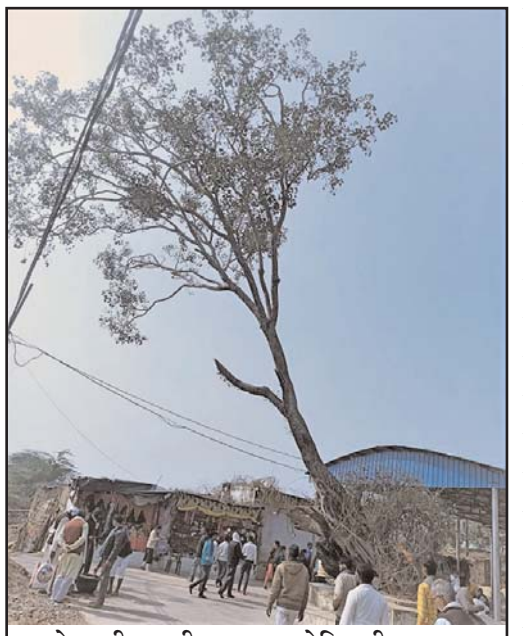

गोस्वामी तुलसी दास द्वारा रोपित पीपल वृक्ष

सन् 1978 से 1982 तक शिवरामपुर में मेडीकल ऑफिसर रहे उदयपुर निवासी डॉ. पुरुषोत्तमलाल शर्मा पालीवाल (72) ने बताया कि खास मौकों पर उनकी टीम द्वारा वे स्वास्थ्य सम्बन्धी जनसेवार्थ अपनी उपस्थिति के साथ यात्रा-पथिक बने। मुख्य महत्त्वपूर्ण स्थलों की जानकारी जुटाने के साथ उस दौरान आने वाले विशिष्टों एवं अति विशिष्टों के साथ अपनी सेवाओं के लिए उनके हमसफर बनते रहे।

डॉ. शर्मा ने बताया कि कामदगिरि के चहुंओर प्रवाहित पयस्विनी नदी का पानी बहुत ही शुद्ध और गहराई लिये है। पानी में ठेठ पैंदे तक मछलियां देखी जा सकती हैं जो नदी के प्रवाह को शुद्ध एवं स्वच्छ बनाये रखती हैं। मछलियों के कौतुक भी देखते ही बनते हैं। वे स्वच्छन्द इसलिए भी हैं कि उनका शिकार करना पूर्ण प्रतिबन्धित है।

पयस्विनी घने सघन वन के बीच अपना बहाव लिए अनेक ऐतिहासिक अध्यायों का लेखाजोखा समेटे शाश्वत बनी हुई है। मुख्य रूप से भगवान राम के जीवन से सम्बन्धित अनेक स्थलों की वह साक्षी बनी हुई है। उसी के किनारे-कोणों में रामशैय्या, अनसुया स्थल, रामघाट, जानकीकुण्ड जैसे मनोहारी स्थल हैं जो सतयुग के राम, लक्ष्मण तथा जानकी की अनेक यादों को आत्मसात कराते, पुण्य की प्राप्ति के असीम सुख से सराबौर जीवन की सार्थकता की अनुभूति कराते हैं। ये स्थल उसी तरह महत्त्वपूर्ण हैं जैसे काशी की परिक्रमा में कन्दवा, भीमचण्डी, रामेश्वर, शिवपुर तथा कपिलधरा हैं।

राम-शैय्या में राम-सीता निवास करते हैं। रात्रि को शयन के दौरान लक्ष्मण अखण्ड अपलक पहरा देते। प्रसिद्धि है कि लक्ष्मण पर निद्रादेवी की बड़ी मेहर थी सो वे कभी सोये नहीं। जानकीकुण्ड में सीतामाई नित्य स्नान करती थीं।

पयस्विनी के किनारे अर्जुन वृक्षों की बहार देखते ही बनती है। उनकी सौंधी सुगंध और सुजलाती हवा सहस्त्र रोगों की रामबाण दवा कही जाती है। जंगल में नाना साधु अपनी कमर में डोरी की बांधनी के सहारे लंगोटी लिये साधनामग्न रहते हैं। उनकी जटाएं भी रस्सी-सी बुनावट लिए सिर पर सर्पाकार फनी देतीं बड़ी शोभायमान लगती हैं। उनका पूरा शरीर भस्मी से आवेष्ठित रहता है। उस बीच उनकी छोटी-छोटी आंखों की चमक जैसे अंधेरे में मणि-सी उज्वला प्रकाशमान बड़ी ही मोहक बनी लगती हैं। लंगोटी की यह रस्सी कोपिन कहलाती है।

डॉ. शर्मा ने बताया कि पयस्विनी के किनारे रामघाट पर यात्रियों के साथ साधु-सन्त भी स्नान का पुण्य अर्जित करते हैं। घाट पर स्थानार्थियों के तिलक करने वाले मंगल आशीष देते सुखी जीवन की कामना करते हैं। बाबा लोग भी मेले के अवसर पर यहां दिखाई देते हैं।

कामदगिरि की परिक्रमा करते आदिवासियों के जत्थे-के-जत्थे अपने हाथों में लाठी लिये बड़े दमखम के साथ आगे बढ़ते हैं। यात्रा में विभिन्न तरह के यात्रियों की मौज-मस्ती की स्वच्छन्द बहार में अन्य लोकों के व्यक्ति भी मानव के विभिन्न भेष-रूप मिले सम्मिलित होते सुने गये हैं। इनमें चोर-डाकू जैसे भी आस्थावान बने दिखाई देते हैं। कामदनाथ के दर्शन करते चने-केले का प्रसाद चढ़ाया जाता है। देव-दर्शन के साथ यात्रीगण पुजारी के भी धोक लगते हैं। मार्ग में जगह-जगह मांगने वालों की कतारें मिलती हैं जो यात्रियों से भांति-भांति की भेंटें प्राप्तकर खुशमिजाज बने रहते हैं।

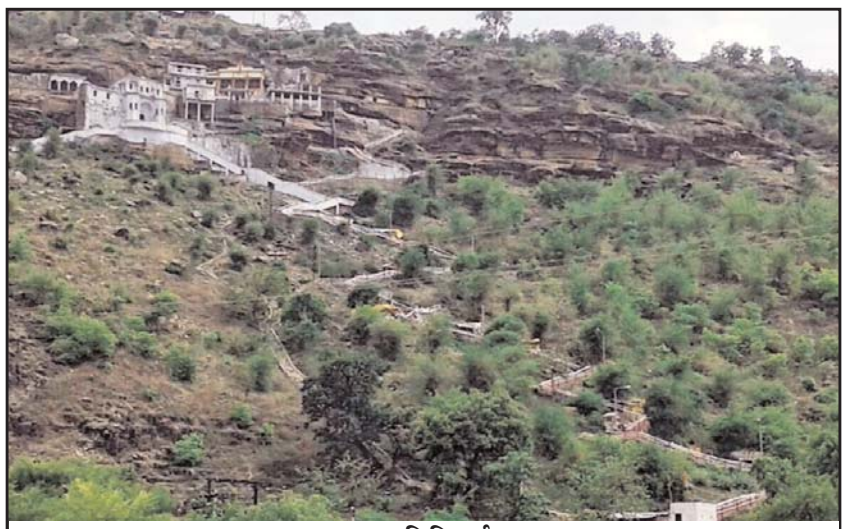

कामदगिरि पर्वत

कामदगिरि का कामदनाथ चौमुखी लिंगाकारी है। जैसे उदयपुर के निकट प्रसिद्ध तीर्थ एकलिंगनाथ का चौमुखी प्रतिमा है वैसे ही कामदनाथ भगवान चहुंदिशि अपना पराक्रम-प्रभाव लिये हैं। एकलिंगनाथ की तरह उनका पूर्व मुख विजय, पश्चिम ज्ञान, उत्तर लक्ष्मी तथा दक्षिण मुख काल का प्रतीक कहा जाता है।

इस यात्रा में वे कामदगिरि भी होते हैं जिनका मनोरथ पूर्ण होने पर वे अपने घर से पेट के बल पथ नापते दण्डीयात्रा के रूप में निकलते हैं। उनके दोनों हाथों में पत्थर होते हैं।

पांवों से लेकर लम्बे फैले हाथ से जहां पत्थर धरा को स्पर्श करते हैं वहां से फिर दण्डवत होते ठेठ कामदनाथ की परिक्रमा कर अपना मनोरथ पूर्ण करते हैं। राह के बीच चल रहे यात्रियों के रेले ऐसे दण्डोतधारियों को बड़ी श्रद्धा सहित नमन कर रास्ता देते अपना सौभाग्य समझते हैं।

कामदगिरि पर्वतमाला अत्यन्त प्राचीन है जिसका उल्लेख रामायण में भी मिलता है। घने जंगलों से लकदक यह पर्वत धर्म और अध्यात्म का अजूबा दर्शन है। इसके चारोंओर परिक्रमा पथ भी है पर लुकेछिपे यह भी सुनने में आता है कि पूरा पहाड़ ही भीतर से खोखला है मगर जाने के रास्ते किसी को ज्ञात नहीं हैं। इसका रहस्य मौन है। यह उन्हें दिखाई देता है जो पारदर्शी पवित्रता लिये हैं।

माना तो यह भी जाता है कि इसके भीतरी प्रकोष्ठ में एक प्रकाशवती झील है जिसकी चमक-दमक से आसपास का अंधेरा क्षेत्र सदैव प्रकाशवान बना रहता है। जिन उच्च आत्माधारी पुरुषों को इसका अदृश्य रास्ता दिखाई देता है वे और भी अनेक अलौकिक प्रसंग देख मन-ही-मन अपने को धनभागी समझते हैं। रामजीवन से जुड़े और भी अनेक प्रसंग यहां मिलते हैं। भरत मन्दिर स्थल राम-भरत-मिलाप को चरितार्थ करता है। चित्रकूट का हर कूट-कण विचित्र चित्रमय आलोक का अलौकिक दस्तावेज है।

सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात डॉ. शर्मा ने यह बताई कि पयस्विनी के घाट पर रामचरितमानसकार गोस्वामी तुलसीदास राम-कथा करते थे। राम-कथा समाप्ति पर वे विधिवत पूजा कर पास के अपने पीपल वृक्ष में जल-चरणामृत चढ़ाया करते थे। यह वृक्ष अभी भी विद्यमान है। यह उनका प्रतिदिन का कार्य था।

डॉ. महेन्द्र भानावत के साथ डॉ. पुरुषोत्तमलाल शर्मा पालीवाल

एकदिन अचानक वहां एक प्रेत प्रकट हो गया। तुलसीदासजी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए बोला- 'इस उपकार के बदले मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं?' तुलसी बोले- 'मैं तो राम के दर्शन करना चाहता हूं।'

इस पर प्रेत ने उत्तर दिया- 'यह मेरे बस का नहीं है। यदि मुझे राम के दर्शन हुए होते तो मैं प्रेत योनि में क्यों पड़ा रहता लेकिन मैं आपको उनसे मिलने का मार्ग बता सकता हूं।' तुलसीदासजी ने कहा-, ठीक है। वह रास्ता ही बता दो। प्रेत बोला, 'आप रोज राम-कथा सुनाते हैं। उसमें आपकी कथा सुनने के लिए प्रतिदिन एक कोढ़ी भी आता है। वह सबसे पीछे बैठकर कथा सुनता है। उसके पैर पकड़ लेना।'

प्रेत की इस बात पर तुलसी अगले दिन राम-कथा के उपरान्त जब सब लोग चले गये तो कोढ़ी को धीरे उठते देख उसके समीप गये। पास जाने पर जब उन्होंने उसके शरीर पर घाव एवं उन पर मक्खियां भिनभिनाते देखीं तो वे पीछे हट गये पर अपने नित्यकर्म में पीपल को राम-कथा के उपरान्त चरणामृत देना बन्द नहीं किया।

एक दिन प्रेत पुन: प्रकट हुआ। तुलसी ने उसे आपबीती घटना बताई तब प्रेत बोला- 'वह कोढ़ी नहीं, साक्षात् हनुमानजी हैं। वे हर राम-कथा में उपस्थित रहते हैं। इसबार चूक मत करना।' कहते हैं, दूसरे दिन तुलसी ने उनके पैर पकड़ लिये और विनयपूर्वक कहा, 'मुझे प्रभु श्रीराम के दर्शन करा दें।' कोढ़ी बोला- 'मुझे छुओ मत। मैं तो कोढ़ी हूं।'

तुलसी अपने निश्चय पर दृढ़ रहे सो पैर नहीं छोड़े। अन्त में कोढ़ी बोला, 'प्रभु श्रीराम मेरे आराध्य हैं। तुम उनके दर्शन क्यों करना चाहते हो?' तुलसी ने जवाब दिया, 'मैं राम-कथा लिख रहा हूं किन्तु जब तक मैं प्रभु श्रीराम को अपने नैत्रों से न देख लूं तब तक मेरा लेखन प्राणवन्त नहीं बन सकेगा।' इस पर हनुमानजी ने उन्हें प्रभु श्रीराम के दर्शन हेतु आश्वस्त किया।

गोस्वामी तुलसीदासजी पयस्विनी के किनारे सदैव चन्दन घिसते तथा वहां आते-जाते लोगों को तिलक लगाते। एक दिन वहां पीपल पर बैठे तोते के रूप में हनुमानजी ने उन्हें आगाह किया, 'जिन्हें तुम तिलक लगा रहे हो, वे बाल-स्वरूप राम-लक्ष्मण हैं।' यह कह तोते ने निम्नांकित दोहा उच्चरित किया जो आज भी जन-जन में सर्वाधिक लोकप्रिय है। वह दोहा है -

चित्रकूट के घाट पर, भयी संतन की भीर।
तुलसीदास चन्दन घिसे, तिलक देत रघुबीर।।

- म. भा.

बाजार / समाचार

पिम्स में हाथ की सर्जरी कर बनाया नया अंगूठा

उदयपुर (ह. सं.)। पेसिफिक इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइसेंज पिम्स हॉस्पिटल, उमरड़ा में चिकित्सकों ने एक बच्चे के हाथ की सर्जरी कर नया अंगूठा लगाया है।

पिम्स हॉस्पिटल के चेयरमेन आशीष अग्रवाल ने बताया कि प्रतापगढ़ निवासी आठ वर्षीय बच्चे को गत दिनों भर्ती किया गया जिसके हाथ में जन्म से केवल अंगुलिया थी, अगूंठा नही था। इसे मेडिकल भाषा में रेडियल क्लब हेंड वीथ हाइपोप्लास्टिक थंब कहते है। इस कारण बच्चे को कुछ भी वस्तु पकड़ने व हाथ से काम करने में बडी परेशानी आती थी। पिम्स हॉस्पिटल के हेण्ड व माइक्रो वेस्कुलर सर्जन डॉ. योगेशकुमार शर्मा ने बच्चे के हाथ की चार अंगुलियों में से पहली अंगुली से अंगूठा बनाया। बच्चा अब पूर्णत: स्वस्थ है और तीन अंगुलियों व अंगूठे से काम करने में सक्षम है। ऑपरेशन में डॉ. शर्मा के साथ शिशु व बाल रोग विशेषज्ञ डॉ. विवके पाराशर, निश्चेतना विभाग के डॉ. पिनु राणावत व टीम ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

डॉ. शर्मा ने बताया कि सामान्यतया जिनके हाथ में अंगूठा ना हो या हाथ कलाई से टेढ़ा हो उनका ईलाज विशेषज्ञ की देखरेख में जन्म के तुरन्त बाद शुरू हो जाना चाहिए। इस तरह की अगूंठा बनाने की सर्जरी उसके जन्म से एक वर्ष के भीतर ही कर देनी चाहिए जिससे इस समस्या से निजात मिल सके।

फ्रेशर पार्टी रूबरू आयोजित

उदयपुर (ह. सं.)। गीतांजलि डेंटल एवं रिसर्च इंस्टिट्यूट में रूबरू-2021 का आयोजन किया गया। शुरुआत सीईओ प्रतीम तंबोली, जीडीआरआई डीन प्रो. डॉ. निखिल वर्मा, जीएमसीएच डीन प्रो. डॉ. नरेंद्र मोगरा, वाइस प्रिंसिपल जीएमसीएच प्रो. डॉ. मनजिंदर कौर, चिकित्सा अधीक्षक डॉ. सुनीता दशोत्तर, गीतांजलि कॉलेज ऑफ नर्सिंग डीन डॉ. संध्या घई के दीप प्रज्वलन से हुई। संयोजक डॉ. मीनल वर्मा एवं डॉ. डेविन आर्नोल्ड के मार्गदर्शन में विद्यार्थियों ने सोलो डांस, ग्रुप डांस, सिंगिंग, फैशन शो की प्रस्तुतियां दी। पेसिफिक डेंटल कॉलेज के वाइस प्रिंसिपल डॉ. मोहित पाल, पेसिफिक डेंटल की हेड डॉ. नीमा राय ने चयन दास को मिस्टर फ्रेशर तथा लीसा सिन्हा को मिस फ्रेशर चुना।

जेके टायर ने स्मार्ट रेडियल टायर्स की रेंज पेश की

उदयपुर (ह. सं.)। देश में रेडियल टायर टेक्नोलॉजी में अग्रणी जेके टायर ने सभी श्रेणियों की बसों के लिए ईवी स्पेसिफिक स्मार्ट रेडियल टायरों की सम्पूर्ण श्रृंखला विकसित करके उद्योग में अपने तकनीकी कौशल को और बढ़ाने के लिए एक और कदम उठाया है। इस श्रंखला में भारत में चलने वाली सभी बसेज, ट्रक और पैसेंजर कार्स शामिल हैं। अत्याधुनिक ग्लोबल टेक्नोलॉजी सेन्टर रघुपति सिंघानिया सेंटर ऑफ एक्सीलेंस (आरपीएससीओई) के इंजीनियरों द्वारा डिजाइन और विकसित, टायरों को इलेक्ट्रिक मोबिलिटी की अनूठी जरूरतों को समझने के लिए तैयार किया गया है। जेके टायर एण्ड इंडस्ट्रीज के टैक्नीकल डायरेक्टर वी के मिश्रा ने इस नए डेवलपमेंट के बारे में चर्चा करते हुए कहा कि जेके टायर के लिए, इनोवेशन और टेक्नोलॉजी मुख्य स्तंभ हैं और हमारे ग्राहकों और उद्योग की जरूरतों को पूरा करने के लिए हमारी प्रत्येक उत्पाद श्रेणी अपने समय से आगे है। भारत में ईवी क्षेत्र के विकास के साथ, ईवी-उन्मुख प्रौद्योगिकी का विकास कम्पनी के लिए एक प्रमुख फोकस बना हुआ है। हमारे स्मार्ट टायर ईवी स्पेसिफिक नेक्स्ट जेन डिजाइन फिलॉसफी के साथ विकसित किए गए हैं जो पूरी रेंज को स्मार्ट, शांत, टिकाऊ और ऊर्जा कुशल बनाते हैं।

महावीर युवा मंच द्वारा 'सावन सुहाना' उत्सव आयोजित

मंच की महिला सदस्याएं

उदयपुर (ह. सं.)। जैनदर्शन आधारित भारतीय जीवनमूल्यों के संरक्षण के सर्वजन हिताय महावीर युवा मंच द्वारा 'सावन सुहाना' उत्सव मनाया गया। मंच के संरक्षक प्रमोद सामर ने आगामी उत्सवों में देशव्यापी तीन धार्मिक यात्राओं की रूपरेखा प्रस्तुत की।

मंच के अध्यक्ष डॉ. तुक्तक भानावत ने बताया कि यह उत्सव मोड़ी पार्श्वनाथ स्थित फार्महाउस पर आयोजित किया गया। दिनभर गरजत बादल बरसत बदरा की धूप छांही अठखेलियों के बीच सदस्य-परिवारों ने राखी सरूपरिया के निर्देशन में हाऊजी, छपाक, झूले, रिंग जैसे खेलों का लुत्फ उठाया। इनमें अर्जुन खोखावत, रश्मि पगारिया, प्रमिला पोखरना, रितु सिंघवी, विजया सरूपरिया, प्रमिला पोरवाल सम्मानित की गईं। महामंत्री हर्षमित्र सरूपरिया के अनुसार मंच के पूर्व अध्यक्ष राजेश चित्तौड़ा ने सबका स्वागत किया और खानपान सम्बन्धी नाश्ता, सुस्वादिष्ट भोजन तथा हाईटी की बेहतरीन सुविधा उपलब्ध कराई। उत्सव समाप्ति समारोह के दौरान राजेश चित्तौड़ा का आत्मीय बहुमान किया गया। संचालन वाणी-विशारद आलोक पगारिया ने किया।

दमन विरोधी आंदोलन का राज्य स्तरीय सम्मेलन

जयपुर (ह. सं.)। देश में आज नफरत जैसा माहौल, महंगाई और खराब अर्थ व्यवस्था से आमजन को जूझना पड़ रहा है। उससे छुटकारा पाने के लिए सभी को मिलकर आन्दोलन करना होगा। यह बात पंचायतराज संस्थान के सभागार में दलित आदिवासी, अल्पसंख्यक दमन विरोधी प्रतिरोध आंदोलन में मुख्य वक्ता के तौर महात्मा गांधी फाउण्डेशन के अध्यक्ष महात्मा गांधी के प्रपौत्र तुषार गांधी ने कही।

उन्होंने कहा कि ऐसी समस्याएं देशभर में हैं। गांवों-कस्बों तक हमें मौजूद चुनौतियों पर संवाद करना और राजनीति, सामाजिक और आर्थिक फ्रंट पर जंग लड़नी होगी। उन्होंने 'नफरतों भारत छोड़ो', 'प्यार मोहब्बत लाएंगे-देश को बचाएंगे' का नारा दिया और रणनीति के साथ आंदोलन करने की 9 अगस्त से प्रक्रिया शुरू करने की आवश्यकता बताई।

इस अवसर पर ऑल इंडिया डेमोक्रेटिक वीमन्स एसोसिएशन की अध्यक्ष श्रीमती सुभाषिनी अली ने संविधान के अनुसार समानता, धर्मनिरपेक्षता और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करते दलित, किसान, महिला और सभी वर्गों को साथ मिलकर संविधान की रक्षा करने पर जोर दिया। अरुणा राय ने राज्य की प्रत्येक स्कूल में संविधान की प्रस्तावना का पठन करने पर जोर दिया ताकि बच्चों में प्रारम्भ से ही संविधान के प्रति निष्ठा बढ़ सके। संविधान हमें समानता का अधिकार देता है। इस अवसर पर निशा-तारासिंह सिद्धू, डी. के. छंगाणी, कविता श्रीवास्तव, अब्दुल सलाम जौहर, सुनीता चतुर्वेदी, नजमुद्दीन, रवीन्द्र शुक्ला, सुमित्रा, कुणाल रावत, टी. सी. राहुल, कविता शर्मा, जितेन्द्र मेघवाल, सवाईसिंह, अरविन्द, फादर विजयपाल, सबीना अबरार सहित विभिन्न जिलों से आए प्रतिनिधियों ने अपने विचार व्यक्त किए।

- फारूक आफरीदी

'छूने को आकाश मैं' का लोकार्पण

उदयपुर (ह. सं.)। राजसमन्द में राजस्थान साहित्यकार परिषद द्वारा प्रमोद सनाढ्य की काव्य-कृति 'छूने को आकाश मैं' का लोकार्पण वरिष्ठ साहित्यकार क़मर मेवाड़ी, डॉ. कुन्दन माली, माधव नागदा एवं डॉ. मदनलाल जाट द्वारा किया गया।

क़मर मेवाड़ी ने कहा कि प्रमोद सनाढ्य जागरूक एवं सजग हैं। संग्रह की कविताएं पाठकों को जिम्मेदारी का अहसास कराते हुए सुन्दर संसार के निर्माण की ओर अग्रसर करती हैं। डॉ. कुन्दन माली ने कहा कि कृति की समस्त रचनाएं लय और छन्द का निर्वाह करती हैं जिनका काव्य-संस्कार लुप्तप्राय: हो गया है। माधव नागदा ने कृति में सकारात्मकता और सामाजिकता का विकास होने को रेखांकित किया। समारोह में त्रिलोकी मोहन पुरोहित, प्रमोद सनाढ्य, अफजल खान 'अफजल', नगेन्द मेहता, शेख अब्दुल हमीद, नीतू बाफना, गौरव पालीवाल, भंवरलाल पालीवाल बॉस, ईश्वर शर्मा, नरेन्द्र शर्मा, राधेश्याम सरावगी तथा किशन कबीरा ने अपनी वैचारिक, सामाजिक तथा साहित्य-गौरव की भागीदारी दी।

डॉ. धींग को 5वीं बार जिनवाणी लेखक सम्मान

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल जयपुर से प्रकाशित मासिक पत्रिका 'जिनवाणी' में सर्वाधिक व सतत श्रेष्ठ लेखन के लिए डॉ. दिलीप धींग को पाँचवीं बार जिनवाणी लेखक सम्मान से सम्मानित करते शॉल, मुक्ताहार, सम्मान-पत्र और 11 हजार का चेक प्रदान किया गया। इसी दौरान रमेश 'मयंक' सहित चार लेखक भी सम्मानित हुए।

समारोह में मंचासीन प्रमुखों में न्यायाधिपति प्रकाश टाटिया, जसराज चौपड़ा, सेटलमेंट आयुक्त महेन्द्र पारख, आनन्द चौपड़ा तथा सम्पादक डॉ. धर्मचन्द जैन ने सभी सम्मानितों के योगदान की सराहना की।

प्रणत धींग ने डॉ. धींग की कविता 'जियो और जीने दो' सुनाकर शाबाशी पाई। त्रिलोकचंद जैन ने संचालन किया। **- अनिल जैन**

साहित्यकार माधव हाड़ा सम्मानित

उदयपुर (ह. सं.)। साहित्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय सेवाओं के लिए जिले के ख्यातनाम साहित्यकार व आलोचक प्रो. माधव हाड़ा को बनारस में आयोजित समारोह में प्रो. शुकदेवसिंह स्मृति सम्मान से अलंकृत किया गया। समारोह में अरुण कमल, प्रो. आशीष त्रिपाठी, प्रो. मनोजसिंह, प्रो. अवधेश प्रधान, प्रो. बलिराज पांडेय, प्रो. चन्द्रकला त्रिपाठी, प्रो. वशिष्टनारायण त्रिपाठी, प्रो. श्रीप्रकाश शुक्ल, प्रो. प्रभाकरसिंह, डॉ. भगवंतीसिंह, डॉ. प्रज्ञा पारमिता, डॉ. महेंद्रप्रसाद कुशवाहा ने अपनी वैचारिक गौरवपूर्ण उपस्थिति दी। आयोजन में प्रो. हाड़ा द्वारा सम्पादित अमीर खुसरो, कबीर, रैदास, तुलसीदास, सूरदास और मीरा नामित पुस्तकों का लोकार्पण हुआ। सम्मान स्वीकार करते प्रो. माधव हाड़ा ने कहा कि पिछले दो-तीन दशकों में जो औपनिवेशिक ज्ञान परम्परा हावी हुई है उसने भक्ति-काव्य को समझने की देशज शैली को प्रभावित किया है।

भारतीय लोकनृत्यों.....

(पृष्ठ तीन का शेष)

(1) देवताओं की आराधना करना व इच्छित फल प्राप्ति (2) नृत्य से मोक्ष की प्राप्ति (3) नृत्य से धन्य, यश, आयुष्य व स्वर्ग की प्राप्ति (4) देवताओं का विलास करना (5) आर्तजनों का दु:ख विनाश करना (6) मूढज़नों को उपदेश देना (7) स्त्रियों के सौभाग्य का वर्द्धन (8) शांति-कर्म, पुष्टि-कर्म व काम्य-कर्म की सिद्धि।

लोकनृत्यों पर अध्ययन करने की समझ के आज हमारे पास कई पैमाने, आधार, औजार एवं पारिस्थितिकी प्रबन्ध हैं। ऐसे अध्ययन और अन्वेषण आवश्यक हो गये हैं किन्तु कई बार वे उनके मूल को नहीं पकड़ पाते। मेरे अध्ययन की दृष्टि उनके मूल सत्व एवं सरोकार पर अधिक केन्द्रित रही है। यह आवश्यक भी है कारण कि कई बार आंचलिक संस्कृति को समझने के लिये वहाँ की शब्दावली का बोध नहीं होने से अर्थ का अनर्थ हो जाता है।

उदाहरण के लिये रेगिस्तान के लंगा गायक जब अपने स्वरमाधुर्य में लीन हो ठुमक पड़ते हैं तब विदेश में उनका ठुमकना नृत्य नाम धारण किये 'लंगा नृत्य' बन जाता है लेकिन लंगा - अर्थ से अनभिज्ञ होने के कारण उसका अर्थ लहँगा (घाघरा, कटि के नीचे का पहनावा विशेष) होता हुआ उसे 'पेटीकोट डांस' बना दिया जाता है।

इसी प्रकार बालिकाओं द्वारा श्राद्धपक्ष में दीवाल पर गोबर- फूलों से सज्जित सांझी के गीत की एक पंक्ति है- 'अतल-पतल की तोरमी।' तोरमी का अर्थ तुरई से है पर अतल-पतल को जानकारी के अभाव में निरर्थक शब्दावली माना जाता है जैसे बच्चों के गीतों में प्रयुक्त कई शब्द होते हैं पर गहराई से चिंतन करने पर अतल-पतल हमारे पल्ले पड़ सकता है।

हमारे यहाँ सात तल जिन्हें लोक भी कहते हैं, प्रसिद्ध हैं। उनमें पहला अतल तथा आखिरी पतल है - अतल, सुतल, वितल, तलातल, महातल, रसातल एवं पाताल। गीत-पंक्ति में अतल की तुक में पाताल भी पतल हो गया है। ऐसा होने से वह अधिक लयात्मक, गत्यात्मक तथा सौंदर्यनिष्ठ भी बन गया है। बालिकाओं के सरल मन एवं सहज स्वर-माधुर्य में अतल की संगत में शोभित होने के लिए पाताल को पतल ही होना था। ऐसी ही स्थिति राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न नामक चारों भाइयों में लक्ष्मण और शत्रुघ्न के साथ हुई। इन दोनों के नाम वाचन-कथन की दृष्टि से क्लिष्ट होने के कारण लोक में लक्ष्मण लखन और शत्रुघ्न भरत की तर्ज पर चरत हुआ मिलता है।

लोकनृत्य ही क्यों ; लोक का कोई अध्ययन कभी पूर्ण नहीं होता। वह जितना-जितना पूर्ण हुआ लगता है उतना-उतना अपूर्ण हुआ जाता है। हमारे खोज के पग जितनी डंडियाँ नापेंगे उतनी ही अधिक पगतलियाँ हमारा मार्ग प्रशस्त करेंगी।

शरीर के विभिन्न अंगों एवं अवयवों द्वारा ताल एवं लयबद्ध अर्थपूर्ण गति-अभिव्यक्ति को नृत्य कहते हैं। केवल हाथ-पाँव हिलाना, भौंडी शक्ल बनाना अथवा उछलकूद करना नृत्य नहीं होता। इसके लिए जरूरी है कि विशिष्ट भाव, रस एवं व्यंजना की प्रतीती दर्शकों को हो। साथ ही नर्तक अपने मनोभावों का उल्लास के साथ प्रगटीकरण कर सके। इस दृष्टि से यदि देखा जाय तो हर व्यक्ति अपने भीतर एक नृत्यकार का मन लिये होता है।

सामान्यत: व्यक्ति के दो स्तर होते हैं। एक सहज एवं सरल व्यक्ति तथा दूसरा असहज एवं विशिष्ट व्यक्ति। सहज एवं सरल व्यक्ति का समाज ही लोकसमाज है। यह समाज लोकानुरंजन से भरपूर होता है। अपनी आवश्यकताओं एवं उम्मीदों में यह संतोषी होता है। यह परम्पराओं का पोषक, संस्कृति का संरक्षक, सामाजिक सरोकारों का हेतालु एवं धर्म-कर्म के प्रति आस्थावान होता है। लोकगीत, लोकनृत्य, लोकोत्सव, लोकानुरंजन इसी समाज की धरोहर होते हैं।

इसके अलावा एक समाज और है- जनजातीय समाज। इस समाज में तो नृत्य जैसे जीवन का ही अनिवार्य हिस्सा है। इसमें स्त्री-पुरुष मिलकर एक घेरे में नाचते हैं। पंक्तिबद्ध होकर भी नाचते हैं। स्त्री-पुरुष अलग-अलग पंक्तियों में भी नाचते हैं तब पंक्ति आमने-सामने होती है। मोटे रूप में तो लोकनृत्य समूह की ही धरोहर है। समूह में ही यह खिलता है, फबता है, खिलखिलाता है। गीत-संगीत के बिना नृत्य अलूणा है, कोरा है, एकाकी है, गुमसुम है। उसका मजा ही उन्मुक्त होकर गाने में है।

संगत वाद्यों की ऊंची गूंज देती स्वर-लहरियों के साथ चौकड़ी भरने में है। तारों भरे आकाश-सी चन्द्र-किरणें छिटकाने, मुस्कान बिखेरने, हास्य छोड़ने, मुलकने, मजा देने और लेने में है। घेरघुमेर धरती पर किलकारी द्वारा किल्लोल करने में है। पाँव थिरकाने से लेकर आँखें मटकाने तक जितनी भी क्रिया-प्रतिक्रियाएँ और घुंघरु की छन-छनन से लेकर ढोल के ढम-ढम ढमाके के साथ जितनी भी अदाकारियाँ हो सकती हैं वे सब नृत्य को बहु-शोभित, बहु-रूपायित एवं बहु-रंगायित करती हैं।

अलग-अलग समाज, जातियों और समूहों के नृत्यों की प्रकृति एक जैसी लगती हुई भी भिन्न-भिन्न होती है। जिस समाज, जाति और समूह का नृत्य होगा उसमें उसकी परम्परा, जातिगत गुण, समूहगत जीवनाचार की छाप ठसक और अन्तर्गठन मिलेगा। एक दूसरे की अच्छाई, वैशिष्ट्य और गुणों का प्रभाव भी नृत्यकार ग्रहण करता है। यही कारण है कि एक नृत्य की प्रति-छाया दूसरे नृत्य में देखने को मिलती है। आदिवासियों के नृत्य प्राय: एक जैसी चाल, रचना और छवि लिये दृष्टिगत होते हैं।

भारत राष्ट्र सचमुच अजूबा और वैविध्य भरा है। यहाँ जितने भी प्रांत हैं उन सबका अपना वैशिष्ट्य रहा है। सबके लोकानुरंजन और प्रदर्शन रंजन जुदा-जुदा हैं। लोकनृत्यों को ही लें तो उनमें जो विविधा-विविधता मिलेगी वही अचरज में डालनेवाली है। तब स्वाभाविक है, उन सबका एक जैसा वर्गीकरण भी संभव नहीं है। महाराष्ट्र के लोकनृत्यों के अध्ययन के दौरान मैंने पाया कि यहाँ एक ही नाम के लोकनृत्य का प्रचलन अलग-अलग वर्ग अथवा जातियों में है यद्यपि उसकी प्रदर्शनधर्मी कला के तत्व जुदा-जुदा हैं।

समय के बदलते परिवेश में लोकनृत्यों के पारम्परिक रूप-स्वरूप भी काफी बदले हैं। यह बदलाव समय की मांग और परिस्थिति की पकड़ से आया है। लोकधुनों की जगह सिनेमा के लोकप्रिय होते गीतों की धुनों ने ले ली है। पोशाक, सज्जा तथा कथ्य-विषय में भी बदलाव आया है।

कुछ लोकनृत्यों ने सरकारी प्रचारतंत्र के रूप में अपनी जगह बनाली है तो कुछ ने सरकार के उद्देश्यों के अनुरूप नृत्यों के माध्यम से गीति-रचना कर उद्देश्यपूर्ति में भागीदारी देना प्रारम्भ कर दिया है। ऐसा कई प्रान्तों में हुआ है।

अब अध्ययन के तौर-तरीकों में भी बड़ा बदलाव आया है। एक ही वस्तु को कई अंदाजों में जांचा परखा जाने लगा है फिर लोकनृत्य तो अपनेआप में ज्ञान-विज्ञान की कई धाराओं को समाविष्ट किये हैं। ऐसी स्थिति में समाजशास्त्र, नृतत्वशास्त्र, साहित्य, संस्कृति, संगीत, नृत्य, वेशभूषा, रंगमंच, साजसज्जा जैसे कई विषयों में इनका पैना अध्ययन-विश्लेषण किया जा सकता है। तुलनात्मक दृष्टि से भी इनका अध्ययन रुचिपूर्ण बन सकता है।

सम्मान एवं पुस्तक लोकार्पण

लखनऊ (ह. सं.)। श्रीकृष्णप्रताप विद्याविन्दु लोकहित न्यास एवं शिवसिंह सरोज स्मारक समिति द्वारा 10 जुलाई को सम्मान समारोह एवं पुस्तक लोकार्पण कार्यक्रम हुआ। सम्मानित विभूतियों में जयप्रकाशसिंह, राजापालसिंह, प्रो. योगेन्द्रप्रतापसिंह, विधि नागर, विश्वंभरनाथ अवस्थी, सुमन पाण्डा, डॉ. त्रिभुवननाथ चौधरी, सुधासिंह तथा कृष्णकुमार यादव को विविध सम्मान प्रदान किये गये।

समारोह में फुलवा बरन मन सीता, गुल्ली डंडा रेत में, राष्ट्रगौरव सत्यवादी हरिश्चन्द्र तथा गुलमोहर अपने-अपने का लोकार्पण किया गया। मुख्य अतिथियों में डॉ. दिनेश शर्मा, डॉ. सूर्यप्रकाश दीक्षित, पद्मश्री मालिनी अवस्थी, पवनसिंह चौहान, चन्द्रभूषण पाण्डेय, यतीन्द्र मिश्र, अशोक चौधरी, बाबा श्री हरदेवसिंह, आनन्दवर्द्धनसिंह, विधि नागर आदि ने साहित्य और लेखन से जुड़े विषयों पर गम्भीर वक्तव्य दिया। रमासिंह, डॉ. भारतीसिंह, डॉ. करूणा पाण्डे, पवन अग्रवाल ने समारोहिक स्वागत-संचालन की भूमिका दी।

- डॉ. विद्याविन्दुसिंह

डॉ. छतलानी को साहित्य के तीन राष्ट्रीय सम्मान

उदयपुर (ह. सं.)। विश्व भाषा अकादमी की राजस्थान शाखा के अध्यक्ष व जनार्दनराय नागर राजस्थान विद्यापीठ के सहायक आचार्य डॉ. चंद्रेशकुमार छतलानी को उत्तम लघुकथा लेखन के लिए भारतीय लघुकथा विकास मंच, पानीपत, हरियाणा द्वारा पद्मश्री देथा 'बिज्जी' स्मृति लघुकथा उत्सव सम्मान 2022, साहित्य संवेद द्वारा कुसुमाकर शिवदरश स्मृति साहित्य संवेद सम्मान 2022 व एनईजेन पब्लिकेशन्स, तमिलनाडु द्वारा बेस्ट राइटर ऑफ 2022 के सम्मान लघुकथा लेखन द्वारा सामजिक मनोबल और संघर्ष बढ़ाने में उनकी साहित्यिक गतिविधियों में योगदान के फलस्वरूप प्रदान किए गए।

कुलपति प्रो. कर्नल एस. एस. सारंगदेवोत ने कहा कि डॉ. छतलानी अपने साहित्यकार धर्म का निर्वहन जिस प्रकार कर रहे हैं, वह नि:संदेह सराहनीय है। विश्व भाषा अकादमी के राष्ट्रीय अध्यक्ष मुकेश शर्मा ने कहा कि छतलानी न केवल प्रभावी और समाज को प्रतिबिंबित करती लघुकथाओं का लेखन कर रहे हैं बल्कि उनके शोधकार्यों का स्तर भी उत्तम है।

दौलत कैपिटल ने 1400 रूपये का लक्ष्य रखा

उदयपुर (ह. सं.)। देश की अग्रणी डिजिटल पेमेंट्स एण्ड फाइनेंसियल सर्विसेज कम्पनी पेटीएम अपने विविधिकृत कारोबार में जबरदस्त विकास दर बनाये रखी है। मंगलवार को एनॉलासिस एवं रिसर्च फर्म दौलत कैपिटल ने पेटीएम के लिए खरीद रेटिंग बरकरार रखते हुऐ 1400 रूपये का टारगेट प्राइस तय किया है। इस रिसर्च फर्म ने कहा कि पेटीएम एक बेसिक रिचार्ज प्लेटफार्म से डिजिटल भुगतान दिग्गज के रूप में तेजी से आगे बढ़ रहा है। पेमेन्ट, लेंडिंग प्रोडक्ट्स, इन्वेस्टमेंट प्रोडक्ट्स, कॉमर्स इत्यादि ने इसकी स्वीकारोक्ति एवं दायरे को कई गुणा बढ़ाया है। इसने अपेक्षाकृत कम सीएसी प्रति श्रेणी के साथ ग्राहकों से लाइफ टाइम वैल्यू की वृहद संभावनाओं को तैयार किया है।

हिंदुस्तान जिंक माइनिंग अकादमी का शुभारंभ

उदयपुर (ह. सं.)। हिंदुस्तान ज़िंक ने खनन कार्यों में व्यापारिक भागीदारों के कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने के उद्देश्य से जावर में हिंदुस्तान जिंक माईनिंग अकादमी की स्थापना की है। देश मे खनन क्षेत्र में कुशल कर्मचारियों की महती आवश्यकता है, इस समस्या को हल करने के उद्देश्य से इस हेतु सहायता के लिए, कंपनी ने अनुसंधान किया जिसने जंबो ड्रिल ऑपरेटरों की पहचान करने में मदद की। इस क्षेत्र में अक्सर एक्सपैट्स द्वारा रूचि ली जाती है। खनन व्यवसाय में आंतरिक प्रतिभाएं अधिक और बेहतर कुशल कर्मचारी विशेष रूप से उपयोगी साबित हो सकते है। उदघाटन समारोह में हिन्दुस्तान जिंक के मुख्य कार्यकारी अधिकारी अरूण मिश्रा, सीएचआरओ अजय सिंगरोहा, जावर के आईबीयू सीईओ विनोद कुमार एवं जावर मजदूर संघ के जनरल सेक्रेट्री लल्लूराम मीणा उपस्थित थे।

अरुण मिश्रा ने कहा कि अकादमी की स्थापना का उद्देश्य देश के युवाओं के लिए खनन उद्योग में कौशल को बढ़ाना है। यह अकादमी जंबो ड्रिल ऑपरेटरों, लोड हॉल डम्पर (एलएचडी) ऑपरेटरों और लो-प्रोफाइल डम्पर ट्रक (एलपीडीटी) ऑपरेटरों को प्रशिक्षित करने में मदद करेगी और उन्हें भारतीय खनन उद्योग में कौशल बढ़ाने और प्रवासियों पर निर्भरता को कम करने में सक्षम बनाएगी। हम 20 खनन अनुभवी जंबो हेल्पर्स के साथ जावर में माइनिंग एकेडमी का पहला बैच शुरू करेंगे और अन्य खनन स्थानों से बैचों को आमंत्रित करना जारी रखेंगे। कार्यक्रम पांच महीने की अवधि में होगा जिसमें 16 सप्ताह का कक्षा निर्देश, अनुकरण प्रशिक्षण और सात सप्ताह का ऑन-द-जॉब निर्देश शामिल होगा।

राजस्थानी लोककलाओं का सर्वेक्षण (16)

- डॉ. महेन्द्र भानावत -

पिछले अंक में आप पढ़ चुके हैं सीकर क्षेत्र के लोकानुरंजनों में प्रचलित ख्याल मण्डलियां और उनसे जुड़े कलाकारों तथा गींदड़, चौक चांदणी, धमाल एवं बुड़सू के प्रख्यात खिलाड़ी, ख्याल लेखक लच्छीराम उस्ताद के बारे में। ख्यालों में लक्ष्छीराम ने ही सबसे पहले हलकारे का प्रारम्भ किया। यहां पढ़िये आगे का विवरण।

मांडलगढ़ : 25 अप्रेल 1969

मांडलगढ़ क्षेत्र नौटंकी ख्यालों के लिए बड़ा प्रसिद्ध रहा है। ढोली तथा दरोगा जाति के कलाकारों के इन ख्यालों के पेशेवर दल हैं जो ब्याह-शादियों तथा मेलों-ठेलों में नौटंकियां प्रस्तुत करते हैं। जोजवा, खटवाड़ा, बिगोद, बड़ल्यास, बरादेनी आदि गांवों की मण्डलियां इन ख्यालों के लिए दूर-दूर बुलाई जाती हैं। तेजादशमी को तेजाजी का इधर प्रसिद्ध मेला लगता है जिसमें माली लोग कच्छीघोड़ियां नचाकर मेलार्थियों का मनोरंजन करते हैं। इधर भांडों (बहुरूपियों) की भी अच्छी बस्ती है। इनके नाम से यहां पास ही 'भांडों का खेड़ा' बसा हुआ है।

यहां का मोहन भाट बड़ा नामी कलाकार है जिसके कला-चातुर्य में असल-नकल का भेद पाना मुश्किल है। कहते हैं कि महाराणा शम्भूसिंह एकबार इधर शेर के शिकार के लिए आये। उस समय मोहन शेर बनकर उन्हें जंगल में दिखाई दिया। महाराणा उसे असली सिंह मान गए और ज्योंही शिकार के लिए उद्यत हुए कि मुसाहिबों ने उन्हें रोका। महाराणा को जब सारी बात ज्ञात हुई तो उन्होंने मोहन भांड के करिश्मे पर अचरज किया। उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और उसकी कला से प्रभावित होकर उसे जागीर दी। माण्डलगढ़ की भैंसों तथा मीण्डों की लड़ाई बड़ी प्रसिद्ध रही है।

जहाजपुर : 26 अप्रेल 1969

जहाजपुर तुर्राकलंगी ख्यालों के लिए बड़ा प्रसिद्ध स्थल रहा है। ये ख्याल माच के ख्यालों के नाम से जाने जाते हैं। यह माच खुला 7-8 फीट ऊंचा होता था। इसे फूल, पत्तों तथा कौर-किनारियों से बड़े कलात्मक ढंग से सजाया जाता था। यह माच सभी पात्रों के वेश-विन्यास तथा शृंगार के लिए होता था। इसके नीचे तख्तों का मंच होता जहां ख्याल प्रदर्शित किये जाते थे। नीचे उतरने के लिए सीढ़ी लगा दी जाती थी।

तख्तों के बांई ओर वादक बैठ जाते। उनके पास ही टेरिये अपनी बैठक जमाते जो पात्र के मुंह से निकले बोल को अपनी टेर में ऊंचा खींचते थे। दर्शक रंगस्थली के चारोंओर बैठकर इन ख्यालों का आनन्द लेते थे। ये शौकिया होते थे। स्व. मोडूलालजी सुनार तथा मथुरालालजी ब्राह्मण सधे हुए खिलाड़ी थे। यहां के 70 वर्षीय नाथूजी दर्जी भी इनके साथ उन ख्यालों में भाग ले चुके हैं।

मोडूलालजी अच्छे लेखक भी थे। उनका लिखा रूक्मणीमंगल ख्याल उन दिनों खूब जमता था। यह ख्याल आज भी नाथूजी को कंठस्थ है। उन्होंने इसके कुछ बोल भी हमें गाकर सुनाये। कहने लगे- 'बाबूजी, वह रंग और महफिल ही और थी। लोग अपने-अपने घरों से खिलाड़ियों के लिए पोशाकें और जेवर जुटाते थे। चौबीस घण्टे हमारी हाजरी में रहते और बाजे वक्त खाना-पीना भूल जाते थे।

खिलाड़ी स्वयं 15-15 दिन पहले से अपनी साज-सज्जा में लग जाते और फिर माच पर आते ही ऐसे फबते और कमाल दिखाते कि दर्शक मंत्रमुग्ध हो अपनेआप में खो जाते, सुधबुध ही भूल जाते। गांव वाले हमारी लोगों की खूब इज्जत करते और हथेलियों पर उठाये रखते। कला क्या थी जादू था। खेल-खेल में रात कब जाती और सुबह कब होती इसका भी ध्यान नहीं रहता और लोग बैठे के बैठे रह जाते। उठने तक का नाम नहीं लेते।'

बोलते-बोलते नाथूजी गद्गद् हो गए। अपने उस्तादों के नाम लेते ही उनका हृदय भर आया और आंखों में अश्रु बूंदें छलकती नजर आईं। नाथूजी जैसे एक नहीं अनेक कलाकार आज भी मौजूद हैं पर कौन पूछता है उन्हें, उनकी कला को, उनके करिश्में को! कहां गया वह लोक, नक्कारों का शो, स्वर-माधुर्य और जनता का उमड़ाव-उल्लास! आज वह रंगस्थल ढूंढा बना हुआ है। ख्याल पुस्तकें चिड़ियों के उजड़े घोंसलों की तरह अस्त-व्यस्त बिखरी पड़ी हैं। आसपास के गांवों का उमड़ता माहौल अब खामोश है।

मैं एक लम्बी उसांस लिए शान्त स्तब्ध नाथूजी की आंखों से अपनी आंखें धोता हुआ चुपचाप अपने गंतव्य की ओर चल पड़ता हूं।

बूंदी : 28 अप्रेल 1969

बूंदी में प्रो. गोविन्दलाल जोशी से सम्पर्क कर इस क्षेत्र की विविध लोक-सामग्री सम्बन्धी जानकारी प्राप्त की। जोशीजी हाड़ौती के लोकनाट्यों पर अनुसंधान कर रहे हैं। इस क्षेत्र की लोकवार्ता विषयक सामग्री का इनके पास विपुल संग्रह है। लीलाओं तथा ख्यालों की दृष्टि से यह क्षेत्र बड़ा लोकप्रिय रहा है। लीलाओं में इधर दो-जड़ी, ढाई-जड़ी तथा चौ-जड़ी दोहे चलते हैं। यथा-

तान माली राजा सूं कहछ।। तान।।
फोज पचरंगी ले लो लार।
सूर की चलकर करो शिकार ।। टेर।।
सुवरण का आया सूर बाग में चलो करो मनवार।
बांध हथियार सूर ल्यौ मार।
देर करो मत मारो उसको चमन बिगाड़ी बहार।।
-ढाई कड़ी दोहा
तान गणेश की।
सूत्र कांपै साल करो न ओ मूसा की असवारी।
मुलक-मुलक में नांव बड़ा है सोभा भली तुम्हारी।
रद्ध-सद्ध का कंवर आमाना साही करोगा म्हारी।
रद्ध-सद्ध कूं देता गणपत मनोकामना सारी।
गणपत रगस्या कीज्यो म्हारी।
-चौकड़ी दोहा

बूंदी में ख्यालों के प्रसिद्ध अखाड़े रहे हैं। इनमें कागजी देवरा, नागदी, चारभुजाजी तथा मला साहब का देवरा का अखाड़ा उल्लेखनीय कहा जाता है। बूंदी के अतिरिक्त सीलोट, पाटूंदा, गूढ़ा, बड़ोदिया, सथूर, गोठड़ा, अलोद, ठीकरिया, लीलेड़ा, तलवास, झालीजी का बराणा, नैनवां, पाटन, कापरेण आदि में भी ख्यालों के अखाड़े हैं। डोडिया रंगत में चलने वाले इन ख्यालों की छटा देखते ही बनती है। डोडिया रंगत का उदाहरण -

धावा रतालो जावै लीली हालो
धावा रतालो जावै रे धावा तो रालावै पाल तलाव की।

प्रत्येक खेल के प्रारम्भ में सुमिरण किया जाता है जो 'तखत का सुमिरण' कहलाता है। तखत का यह सुमिरण बूंदी के हाड़ा वंश को किया जाता है।

सुमरण।।
तखत बूंदी को जी सरनांव।
जनोकूं जाणा भूप तमाम।
अगन वंस आदू कुल मानो चारभुजा चावाणा।
जनों की तड़ चोईस बखाणा।
धरमवान रणधीर सिरोमणि ज्यांन हाड़ा राणा।। 1।।
सूरजमल सूरज कजोड़ रतन-रतन परमाण।
भोज तो भोज बराबर जाण।
सुत्रसाल सत्रु नह राख्या कविजन करै बखाण।। 2।।
राव बुध का बलजंगी सूं।
मार्या एक पठाण।
मारल्यो अकोराव नाराण।
चित्तोड़पति देवाणपति लियो भुजा कपाण।। 3।।
रतन मुकुटमणि गवुं छुड़ाई।
दुष्ट कसाई काट जनों का सबसे जबरा ठाठ।
राख्या राज धर्म निज राख्या।
दीनी दौलत बांट।। 4।।
राजतीत अर गुण का स्वामी।
सदा धरम की पाल।
सदा दली की आड़ी ढाल।
प्रजापाल साल दुसमन को
रामपुत्र भोपाल।
तालकोट तक बजे नगारो दल्ली के दरबार।
ज्यांको तेज अपार
जिनों की जबरदस्त तलवार।
बलाबंद छतरपति
ज्यांको कोई न पावो पार।। 5।।
बासठ में बरखा न होई जी राजा
सब दनयां घबराई।
आपने सबकी लई बचाई।
कृपा करो रघुवर नरेस
पुत्र दो सुकराई।
लोमस काग भुसंड रसी-रसी
मारकंडे सेस।
मदनी ऊपर चंद दनेस।
जब तक धरती जब तक
हाड़ा करजो राज हमेस।
बूंदी दिला काजला तारागढ़ को
सबा बराना ताव।
जीके लगता तीनों गांव।
उनका स्वामी एक बराज
जिसका स्वामी राम।
तखत बूंदी को जी सरनांव।

पाटन और कापरेल की रामलीला प्रसिद्ध रही है। झाली का बराणा में 'नृसिंह लीला' का अच्छा अखाड़ा है। नैनवां में होली पर 'मालदेव को हुड्डो' प्रदर्शित किया जाता है। पृथ्वीराज तथा रामरसाण के डंडेर भी इधर अधिकाधिक रूप में लोकप्रचलित रहे हैं। तेजादशमी पर तेजाजी की विनोली के निराले ठाठ में लोक उल्लास उमड़ पड़ता है।

ढोलक की थाप पर स्त्री-पुरुष मिलकर नृत्य का जो समां बांधते हैं उसका कोई सानी नहीं। अप्रकाशित ख्याल लेखकों में मगनलाल (गोपीचन्द का ख्याल), कन्हैयालाल (गोरधन लीला), जोशी मांगीलाल (नरसंग लीला) तथा गोपीलाल के ख्यालों की हस्तप्रति भी जोशीजी के पास मुझे देखने को मिली। इनमें से मोरधज लीला सं. 1884 की लिखी हुई है।

शाहाबाद : 01 मई 1969

शाहाबाद मुख्यत: सहरियों के लिए प्रसिद्ध रहा है। राजस्थान के आदिवासियों में सहरियों का भी अपना विशेष महत्व रहा है। भीलों तथा गरासियों की तुलना में कला-संस्कृति की दृष्टि से यद्यपि सहरियों में किन्हीं विशेष रंगीनियों के दर्शन नहीं होते फिर भी इनकी सांस्कृतिक कला-थातियों की अपनी परम्पराएं रही हैं जो इन्हें उक्त दोनों जातियों से सामंजस्य स्थापित करती हुई भी एकता में भिन्नता की अनेक दिलचस्पियों को पुष्ट करती हैं।

फारसी में सहर से तात्पर्य जंगल होता है। सहरिया इसी सहर शब्द से बना है जो जंगलवासी का सूचक है। घने जंगलों में निवास करने के कारण यदि ये आदिवासी सहरिया कहलाने लगे हों तो कोई आश्चर्य नहीं। आज भी ये लोग पूर्णतया जंगलवासी ही बने हुए हैं। राजस्थान में सहरिया की सबसे अधिक बस्ती शाहाबाद क्षेत्र में ही रही है।

इनके जीवन का प्रत्येक उल्लास नृत्य-गीतमय होता है। ब्याह-शादियों में अपने मुंह पर भांति-भांति के मुखौटे धारण कर प्रत्येक स्त्री-पुरुष नृत्य में निमग्न हो गीतों के 'रसिया' और 'कन्हैया' खड़ा कर देते हैं। ढप, चंग और ढोल की स्वर लहरियों में ये आदिवासी अपना उन्मुक्त जीवन व्यतीत कर नैसर्गिक सौंदर्य का बड़े मजे से उपभोग करते हैं। राम और सीता की जीवन्त संस्कृति यहां भी इनका आदर्श बनी हुई है। सीता जवानी की देहली पर चढ़ आई है और किसी से धनुष नहीं टूट रहा है-

सीता हो गई रे भर जवानी धनुष नहीं टूटे रे रसिया।

जहां इस पीड़ा से प्रत्येक सहरिया-जनक संतप्त हुआ दृष्टिगोचर होता है वहां राम के अभाव में ये लोग अब अधिक देर तक चुप्पी साधे बैठे नहीं रहकर शीघ्र ही कोई हल ढूंढ लेते हैं। उन्हें राम के नहीं मिलने का जितना सोच नहीं है उतना सोच इस बात से है कि देहली पर चढ़ आई उनकी सीता कहीं देहरी से उतर न पड़े अत: वे स्वयं सीता को ही आचरणयुक्त अधिकार दे बैठते हैं कि वह स्वयं ही अपने राम खोज ले।

तेरी मेरी हो गई रे पहचान निभानी रे रसिया।

सहरिया में नाता तथा मजरखा दोनों प्रथाएं प्रचलित हैं। नाता प्रथा के अनुसार जहां एक ओर पुरुष स्त्री की को अपनी जीवनधर्मी बनाता है वहां मजरखा प्रथा के अनुसार दूसरी स्त्री भी इस बात की अधिकारिणी है कि वह किसी पुरुष को अपने जीवन संगी के रूप में स्वीकार कर अपने घर में रख सकती है।

सहरिया समाज में बहुविवाह प्रथा का विशेष जोर रहा है। दो-तीन पत्नियां रखना आज भी गौरव एवं प्रतिष्ठा का सूचक है। यहां स्त्रियां पैर की जूती नहीं समझी जाकर सिर का सेवरा मानी जाती है। ये लोग पूर्ण आस्तिक और धर्मजीवी होते हैं। तेजा, काली, दुर्गा, गणेश आदि की पूजा में इनका अटूट विश्वास रहा है। संक्रान्ति, होली, दीवाली आदि त्यौहार ये लोग भी उतनी ही दिल्लगी के साथ मनाते हैं जितनी दिल्लगी के साथ अन्य लोग मनाते हैं।

इस क्षेत्र में सहरिया संस्कृति के अतिरिक्त हमें किसी अन्य कला-विधा के दर्शन नहीं हुए। यदाकदा मनोरंजन प्रदाताओं के रूप में कोई तमाशबीन भूलेभटके इधर निकल आते हैं सो बात अलग।

- क्रमश :

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक डॉ. तुक्तक भानावत द्वारा 352, कृष्णपुरा, सेंटपॉल स्कूल के पास, उदयपुर - 313001 (राज.) से प्रकाशित एवं मुद्रक लोकेश कुमार आचार्य द्वारा मैसर्स पुकार प्रिंटिंग प्रेस 311-ए, चित्रकूट नगर, भुवाणा, उदयपुर (राज.) से मुद्रित। सम्पादक : रंजना भानावत। फोन : 0294-2429291, मोबाइल - 9414165391, Email : shabdranjanudr@gmail.com, drtuktakbhanawat@gmail.com, सर्व विवादों का न्याय क्षेत्र उदयपुर होगा।